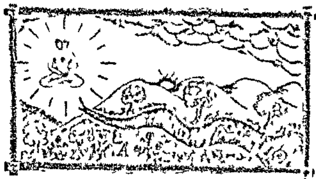


प्रकाशक-शेठ मनुभाई नगिनभाई, व्हाईट हाउस-अमदावाद,
मुद्रक-शाह शांतिलाल हिंमतलाल, श्री हरिहर प्रिन्टींग प्रेस
गांडिया पारसडा-अमदावाद



ज्ञानगंगा

(ज्ञानीयों के सुवचनों का संग्रह)

— प्रकाशक —

श्री जैन श्वे. संघकी पेढी
पिपली बजार इंदौर सीटी (म. भा.)

वीर नि. सं.	आगमो ३	विक्रम सं.
२४८४	८	२०१४



प्रथमावृत्ति	मूल्य
१००	१ रुपया



आर्थिक सहायक

५०१ शेठ आईदानजी जमनालालजी राजनादगांव (C. P.)
७५१ शेठ जेशिंगभाई कालीदास ट्रस्ट
हस्ते मागाभाई जेशिंगभाई, मनुभाई जेशिंगभाई
व्हाइट हाउस, अमदावाद.

चित्रों की अनुक्रमणिका



प्रकाशक की ओर से—

हर्ष की बात है कि रागाग्निताप से त्रस्त जगत् को परम शान्ति पहुंचानेवाले शिष्य आर्यों के सदुपदेशों के सुंदर [illegible] स्वरूप प्रस्तुत पुस्तक को प्रकाशित करने का हम सौभाग्य लिया है

पू. आगमोद्धारक आगमसम्राट् ध्यानस्थस्वर्गत आचार्यदेव श्री आनन्दसागरसूरीश्वरजी म. श्री के शिष्यरत्न श्री सिद्धचक्राराधक तीर्थोद्धारक पू. आ. श्री चन्द्रसागरसूरीश्वरजी के परम विनयी तपो मूर्ति पू. मुनि श्री धर्मसागरजी म. शिष्यरत्न श्री समेत [illegible]जी आदि पूर्व देश के महान् तीर्थों की यात्रा करके पू. पा. देहली, जयपुर, अजमेर जोधपुर होते हुए मारवाड की छोटी पंचतीर्थी की यात्रा करके वि. सं. २०१३ के ज्येष्ठ मास में आबू पधारे थे, उस समय मन्दिरों की [illegible] पर नियमन करनेवाला एक ट्रस्ट एक्ट राजस्थान धारासभा में पेश होनेवाला था, उस के विरोध में सक्रिय आंदोलन करने के शुभ उद्देश्य से राजस्थान जैन संघ की सिरोही में बैठक थी, उसमें हुए निर्णय के अनुसार सम्मान्य चार–पांच व्यक्ति सिरोही में पू. महाराज श्री को चातुर्मास विराजमान होने वास्ते आबू खरेडी में आये, अहमदाबाद वालों के आग्रह रहते भी सिरोही में चातुर्मास हुआ।

चातुर्मास में अनेक शिक्षित नवयुवक आदि धर्म प्रेमी जनता व्याख्यान श्रवण आदि का खूब लाभ उठाती थी, **श्रीभगवती सूत्र** और **जैन रामायण** की मनोहर देशना से **शिरोही** की धर्म प्रेमी जनता खूब प्रसन्न हुई थी

उस प्रसंग पर रोज बड़े बॉर्ड पर विविध सदुपदेश सक्त सुवचन लिखे जाते थे, और उनका पुस्तकाकार मुद्रण करने का शुभ प्रयास चातुर्मास में वंदनार्थ आये हुए **राजनादगाँव (C. P.)** वाले **शेठ आईदानजी जमनालालजी** ने प्रकट किये हुए ५०१ रुपया देने के शुभ संकल्प से हुआ उन की गुरुभक्ति और ज्ञानभक्ति सराहनीय है

इस पुस्तक का प्रकाशन सुंदर और अनेक चित्रों से समृद्ध जो हो सका है, उस में मुख्य निमित्तरूप **शेठ श्रीमनुभाई जेशिंगभाई** (व्हाइट हाउस—अमदावाद ७) ने रस ले कर ज्ञान समृद्ध पुस्तक जनता के हाथों में पहुंचे ऐसी भावना व्यक्त की, तदनुसार उन्होंने अपने पिताजी के पुण्य स्मरणार्थ बनाये हुए शेठ **श्री जेशिंगभाई कालीदास ट्रस्ट** में से ५००) रुपये देने की उदार भावना प्रदर्शित की

इन की जैन धर्म के साहित्य प्रति आंतरिक जो अभिरुचि है, वह बहुत ही अनुमोदनीय है

इस पुस्तक के मुद्रण के कार्य में साहित्य प्रेमी **पू मुनिराजश्री निरंजनविजयजी म** ने प्रारंभिक सुविधा बहुत दिलचस्पी के साथ कर दी, अत हम उन के आभारी हैं

इसी प्रकार इस पुस्तक को बडी उमग के साथ रात और दिन एक सा परिश्रम करके बडा स्फूर्ति और होशियारी के साथ सज–धज के छापने मे **श्री हरिहर प्रिन्टींग वर्क्स के मैनेजर चीमनलाल भाईलाल शाह के** सप्रयत्न की भूरि–भूरि प्रशसा–अनुमोदना के साथ उन्हें बार–बार धन्यवाद दिया जाता है

गल्ती हो जाना स्वाभाविक है इस चीज की आडम हम अपना यथार्थ क्षतियों को छिपाने का दुस्साहस करना उचित प्रतीत नहीं होता फिर भी भविष्य मे ख्याल रहे इस लिए अपनी गल्तीयों का जानना तो आवश्यक है ही, और इस दृष्टि से प्रस्तुत पुस्तक में सपादन–प्रकाशन या शुद्धि त्रुटी रहा हुई त्रुटियां के वास्ते श्री सकल सघका सविनय मिथ्यादुष्कृत देते हैं

वीर नि स २४८२
वि स २०१४
चै सु १ रविवार

ली
श्री जैन श्वे सघ की पेढी
पिपली बजार
इदौर सीटी
(म भा)

संपादकीय वक्तव्य

वर्तमान युगमें अनेक प्रकार की पुस्तकें प्रकाशित होती हैं, परन्तु युग की परिवर्तनशील प्रक्रिया के गहन बहाव में आ कर बहुत सी पुस्तकें विचारकता एवं समझदारी का द्वन्द्व को निरन्तर करनेवाली हो कर कठिन जगत के अज्ञान मूढ प्राणीयों को जीवनशुद्धि के कार्य में उन पुस्तकों से सहयोग नहीं मिलता है

अत एव कुछ प्रौढ विचारकों ने वर्तमान-युग की मार्मिक परिभाषा बताते हुए स्वच्छन्दता और मताग्रह का समन्वय परिस्थिति का सर्जन करनेवाले अर्थपरक-अभाव एवं विकृत विचारधारा के उत्तेजक प्रकाशनों का युग कह कर जीवनशुद्धि के अवस्थान रूप वर्तमान-युगको बताया है

आज के समय में आवश्यकता है उस साहित्य की जिसे पढ कर विचार पर कर्त्तव्यों की समन्वयात्मक भूमिका आसानी से बनाई जा सके.

इसी उद्देश्य को लेकर प्रस्तुत पुस्तक का संपादन किया है

ज्ञानीयों के वचनों को तथा अनुभवपूर्ण तथ्यों को अपनी योग्यता और हैसियत के अनुसार समझ कर जीवन के साथ एकरूप बनाने के पवित्र कार्य में ऐसी पुस्तकें विशेष प्रकार से मुमुक्षुओं को सहायक होती है

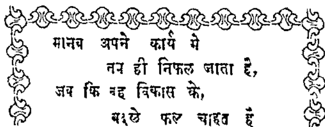
प्रस्तुत पुस्तक कोई नया निर्माण नहीं है, स्वतंत्र मौलिक रचना नहीं है। प्रस्तुत पुस्तक में ज्ञानियों के वचनों का यथामति संकलन है।

भौतिकवाद-प्रधान वर्तमान-युग में लोगों की वृत्ति-रुचि बाह्य अपेक्षा और रूप-रंग की तरफ अधिक होती है, पर ! सच मुच में सोलह सिंगार सज कर विविध नखरे करती हुई वेश्या की अपेक्षा सीधा और सादा पवित्र-निर्मल वस्त्र पहनी हुई पतिव्रता स्त्री की महत्ता को समझने का सप्रयत्न सुज्ञ पाठक करें।

मेरी मातृभाषा हिंदी न होने के कारण शब्दप्रयोगों में व्याकरण या वाक्यरचना संबंधी न्यूनतायें संभवित हैं, एवं अनेक कार्यों की व्यग्रता और दृष्टि-दोष के कारण मुद्रणदोष भी शायद हों, इन सब के वास्ते सुज्ञ सज्जनों से हंस-क्षीर न्यायानुसार पढ़ने की प्रार्थना के साथ गलतियों के लिये त्रिकरण योग से मिथ्यादुष्कृत देता हूं।

वीर नि. सं. २४८४	श्री
वि. सं. २०१४	श्रमण संघ सेवक
वैशाख सुद १	पू. श्री धर्मसागर गणिवर
	चरणोपासक
	मुनि अभयसागर

अनुक्रमणिका



मानव अपने कार्य में
नर ही निफल जाता है,
जब कि वह विकास के,
अच्छे फल चाहते हैं





(ज्ञानीयों के सदुपदेशों का संकलन)

(वि सं २०१३ (चैत्रो) में पू० तपस्वी मुनिरत्न श्री धर्मसागरजी म. गणिवर्यश्री ने ७ साधु के साथ शिरोही (राजस्थान) में चातुर्मास किया और अर्थगंभीर श्री भगवती सूत्र एवं जैन रामायण की रोचक देशना दी, उस प्रसंग पर रोज ब्लेकबोर्ड पर दैनिक सुविचार लिखे जाते थे, उसका यह रोचक संग्रह है)

शांति से जरा पढ़िये तो !!!



आंचे मा परदम पर,
सुद हेच नावीना न उदं।
दर्मियाने खाना गुम कर देम,
साहिब खाना ।।

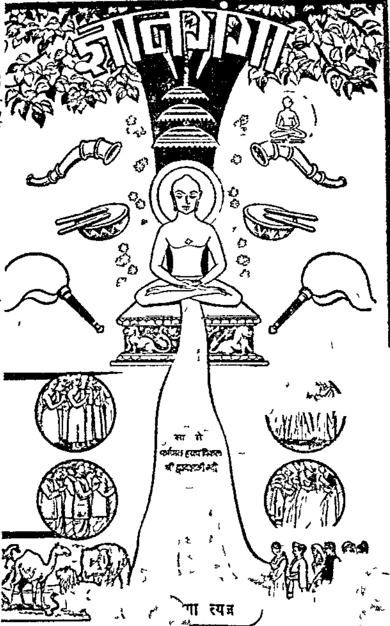
भावार्थ—जो कुछ हमने अपने साथ किया है, (वैसा ना शायद) कोई अंधा भी अपने साथ न करेगा (क्योंकि घर के अंदर रहते हुए भी घर के स्वामी को (हम) गुम किये बैठे हैं

—फारसी सुभाषित

बुल्लेआ! रबदा की पावणा?
इधू पट ते उधे लावणा।।

भावार्थ—मन को संसार से हटाकर आत्मा के तरफ लगाने से ही प्रभु प्राप्ति होती है।

—पंजाब के ब्रह्मज्ञानी संत बुल्लेशाह

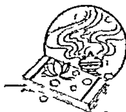


॥ श्री शङ्खेश्वर-पार्श्वनाथाय नमः ॥

॥ नमोऽस्तु शासनपतये श्रीवर्द्धमानस्वामिने ॥



ज्ञानगंगा



(हितकर सुवचनों का सुमधुर संग्रह)

卐 शांति का राजपथ

आधुनिक वैज्ञानिक-युगमें प्रगति एवं सुविधा के नाम पर इन्द्रियों की वृत्तियों को भटका देनेवाले कई अनर्थकारी साधन दिनदूने-रातचौगुने बढते जा रहे हैं ।

ऐसे मौके पर सच्ची निष्ठा एवं पवित्र भावना के साथ ज्ञानीयों के बताये मार्ग को समझ कर तदनुसार जीवन को सुसंयमित बनाना चिरस्थायी शांति के राजपथ का पथिक बनने के लिए जरूरी है

—अषाढ सुद १४

रे जीव ! सुन तुं बापडा !, हिये विमासी जोय ।
आप स्वारथे सहु मल्युं, ताहरु नहीं जग कोय ॥

卐 संस्कारों का बल

निर्मल वस्तु के ससर्ग से निर्मलता का अनुभव सहजमें नहीं होता है, उसके लिए कुछ विशेष प्रयत्न की अपेक्षा रहती है, परन्तु मलिन वस्तु क तो स्पर्श मात्र से ही मलिन असर प्रत्यक्ष अनुभवमें आती है, क्योंकि अशुभ सस्कारों की प्रबलता होने से अशुभ अभ्यास सहज ही हो जाता है, शुभ सस्कार सहसा नहीं पड़ते हैं, जैसे कि कपड़े पर दाग लगनेमें देर नहीं लगती है, देर लगती है दागको मिटानेमें, उसके लिए खर्च तथा परिश्रम भी विशेष करना पड़ता है, इतने पर भी सभव है कि दाग सर्वथा साफ न हो, थोडा–बहुत धब्बा रह ही जायँ

इस तरह अपने जीवनमें अशुभ संस्कारों का बल हमेशा बना–बनाया रहता है, अत विवेकदृष्टि से अशुभ **संस्कारों का** बल कम करने का मार्ग लेना चाहिए

—अषाढ सुद १५

卐 भावना–रसायण

अनादिकालिन मिथ्यादि के रोग को जड–मूल से हटाने क लिए और आत्माके ज्ञानादि–गुणोंका पोषण करने के लिए **बार भावनाओंका रसायण** ज्ञानी भगवंतोंने बताया है

घर्म विना सुण जीवडा! तु भमीओ भव अनत।
मूढपणे भव तें कीया, ईम बोले भगवत॥

मैत्री–प्राणी–मात्र के कल्याण की भावना

प्रमोद–गुण और गुणीओं के प्रति आदर–भाव

करुणा–दु:खीओं के दु:ख दूर करने की तत्परता

माध्यस्थ्य–उपदेश–हितशिक्षा न माननेवाले एवं दुष्टोंके प्रति उपेक्षा–वृत्ति

–आ॰ कु॰ १

卐 भयंकर अज्ञान

जिस शरीर के संपर्कमें आकर पवित्र एवं सुंदर दिखने वाले कस्तूरी, चंदन, फूल, मिठाई, नये गहने एवं कपडे आदि भोगोपभोग के मनमोहक साधन अपवित्र एवं दुर्गंधमय बन जाते हैं, ऐसा अपवित्रता के खजाने समान भयंकर अशुचिपूर्ण इस शरीर को नहाने–धोने द्वारा स्वच्छ एवं साफ–सुथरा करने–रखने की बे–समझदारी की प्रवृत्ति करते रहना और इनके नाम पर आत्म–कल्याण, संयम–साधन आदि के स्वर्ण–अवसर को प्रमादवश गँवाते रहना भयंकर अज्ञान–दशा का नमूना है

अतः शरीर का मोह कम करते हुए जीवन–शुद्धिके काममें लगे रहना जरूरी है

–आ॰ कु॰ २

कुण आपणो! कुण पारको!, कुण वेरी! कुण मित्त!।
राग–द्वेष टाळी करी, धर समता एकचित्त॥

卐 पाप बुरा क्यों?

पाप करते समय उसे छिपाने की वृत्ति बनी रहती है और पाप करने पर भी खुद को पापी के रूपमें संसार पहचाने यह इष्ट नहीं होता है

इससे यह फलित होता है कि–यथार्थता के दृष्टिकोण से **पाप बुरी** चीज है, तभी तो उसको करते समय उसे गुप्त रखने की वृत्ति होती है

फिर भी अनादिकालिन अशुभ–संस्कारों के दबाव से आंतरिक –ज्ञान का प्रकाश इस चीज को स्पष्ट नहीं कर सकता है.

अतः धर्म की आराधना के बल पर शुभ–संस्कारों के बल को बढा कर पुराने कुसंस्कारों की छाया को जीवन से हटाने का संप्रयत्न करना चाहिए

–श्री० कु० ३

卐 जिन–शासन की आराधना

वीतराग के शासन का मतलब ही यह होता है कि —

"राग–द्वेष एवं मोह के विषम संस्कारों पर विजय पाने के लिए यथोचित रूप मे वृत्तियों का सुसंयम करना "

नव–नवा नाटक तू नली, नाच्यो करी बहु रूप।
नाटक एक न नाचीयो, जिणसु छूटे भव कूप॥

इस प्रकार ज्ञानात्मा के बताये हुए इस धर्म आराधना के फल-स्वरूप विवेक, सदाचार एवं संयम के बल पर जीवन की वास्तविक शुद्धि होती है

इस मापक-यंत्र के द्वारा हरदम अपनी धर्मक्रियाओं का अंतरंग स्वरूप सूक्ष्मबुद्धि से जाँचते रहना चाहिए

—श्रा० क्र० ४

卐 जरा सोचिए तो ! ! !

* अगाध समुद्रमें गुम हुई चीज भाग्यवश प्रयत्न के बल पर पुनः पाई जा सके, पर ! प्रमादवश व्यर्थ गुमाया हुआ मनुष्यभव पुनः प्राप्त किया जा सकता है क्या ?

* क्रोडों मण के वजन का बडी भारी कषायों की शिला के नीचे दबे हुए आत्मा की मुक्ति के लिए युक्ति और बल दोनों लगा-कर अंतरात्मभाव को बढाते रहने के बदले नानाविध भोगोपभोगों के साधनों से कर्मों के बंधन में उसे विशेष दृढता से जकड देने की प्रवृत्ति करते रहना उचित है क्या ?

* गुणवान् महापुरुषों के प्रति यथार्थ राग-आदर या बहुमान पैदा किये बिना आत्मकल्याणसिद्धि का राजमार्ग कभी हस्तगत हो सकता है क्या ?

—श्रा० क्र० ५

उत्तम कुल नरभव लही, पाम्यो धर्म जिनराय।
प्रमाद छंडी सेवीये, क्षण लाखेणो जाय॥

卐 मानव-जीवन का महत्त्व

जीवन को आदर्श प्रगति के सच्चे मार्ग पर ले जाने मे अत्यंत उपयोगी सद्विचार एवं सदाचार रूप अत्यावश्यक दो साधनों का सफल संयोग फक्त मनुष्य-भव में ही विवेकी प्राणी को प्राप्त होता है।

व्यावहारिक दृष्टि से पौद्गलिक भोग-सामग्री की विपुल प्राप्ति देवभव में भी होती है, और मानव-भव मे तो पौद्गलिक सामग्री यथोचित मिलने का कोई नियम भी नहीं है।

फिर भी शास्त्रों में मानव-जन्म की जो महिमा है, वह इसी चीज को ले कर कि—"**मनुष्य-भव में जीवन का मौलिक नव-सर्जन विवेक के बल पर सुशक्य है**"।

अतः "जीवन को सुसंस्कारित बनाना" या अविवेक-मूलक विषय-भोगों के पीछे लगे रह कर जीवनशक्ति का अपव्यय करना?" इन दोनों में से किसी एक मार्ग का अवलंबन करने-न करने की जागृत भान हर बुद्धिमान् को पा लेना जरूरी है।

यह जागृति निष्कारण-करुणा-रस के भंडार शास्त्रकारों के हितकर वचनों का विवेक-पूर्वक श्रवण करने से पैदा होती है।

अतः चातुर्मास के पवित्र दिनों में गुरु-मुख से तीर्थंकरों की वाणी सुनने के स्वर्ण-अवसर का लाभ प्रमादवश चूकना न चाहिए। —आ० कृ० ६

जिसु कीजे तिसुं पाईए, करे तैसा फल होय।
सुख-दुःख आप कमाईए, दोष न दीजे कोय॥

✿ शास्त्रश्रवण

जीवन म नाना प्रकार क राग द्वेष एव अज्ञान के विषम संस्कारों के कारण हरदम अशांति बनी रहती है, अतः विवेकपूर्वक महापुरुषों के आदर्श एव उदात्त जीवन के रहस्य को समझानेवाले शास्त्रों का श्रवण करना जरूरी है।

शास्त्र-श्रवण चाहे किसी लोभ या लालच से भी प्राप्त हो जाय तो भी उससे ससार क विषम वातावरण से छूटने का बल सहज में प्राप्त हो जाता है, जैसे कि --नोलिया साँप के साथ लडते समय साँप के जहर से व्याकुल बनने पर झट से दौडा हुआ नागदमनी की बूटी को सूँघ कर स्वस्थ बनकर, खूब ताकत के साथ बडे भयंकर साँप को भी खत्म कर देता है, इसी तरह ससार के खतरनाक परिणामों के जहर को **शास्त्र-श्रवण** के द्वारा विवेकी श्रोता हटा कर जीवन को पवित्र बना लेता है।

अत जीवन को सुख--शांति के मार्ग पर ले जाने के लिये और सब कामों को छोड कर के भी शास्त्रकार--भगवतोंने अपार करुणा से प्रेरित हो कर अज्ञानी जीवों के उद्धार का कार्य सन्मार्ग का उपदेश दे कर जो किया है, उसे विवेकी श्रोताओंने जरूर सफल बनाना चाहिए।

--या० कु० ७

वावी कुरी कोदरी, तो क्यु लणीए शाल?
पुण्य विना सवी जीवडा! आशा आलपपाल॥

जागते रहो ! ! !

इस संसार में भयङ्कर दुश्मन भी जितना अनर्थ नहीं कर सकता है, उससे भी ज्यादह अनर्थ कूटनीति के प्रयोग द्वारा अपनी स्वार्थ-साधना में चतुर एवं विश्वासघाती, हितशत्रु-स्वरूप धोखेबाज मित्र अपने को स्वेच्छापूर्वक अनर्थों के अन्धे कुँएमें उतार के करते हैं।

जगत के इस सनातन नियम को विवेकपूर्वक विचारने पर स्पष्ट प्रतीत होता है कि —

"(पापानुबंधी) पाप के उदय का अपेक्षा (पापानुबंधी) पुण्य का उदय विशेष अनर्थकारी है क्योंकि —उस के द्वारा मिलनेवाले जगत के पदार्थ आत्मा को अतिविषम कर्मों के बंधन में फसा देते है।"

अत पुण्य के उदयसे मिलनेवाले पदार्थों के भोग की तत्परता से अपनी विवेकबुद्धि मलिन होने न पावे इसके लिये सदा जागते रहो ! जागते रहो ! ! जागते रहो ! ! !

—आ० क्र० ८ (९ का क्षय)

वीतराग की सेवा क्यों ?

वीतराग और फिर उसकी सेवा यह तो एक बेमेल का बात मालूम होती है जिसकी सेवा करने से अनुग्रह-महेरबानी होने का संभव नहीं, क्योंकि —रागवृत्ति ही जिनकी

आयु पहोंच्ये आतमा, को नवि राखणहार।
इन्द्र चन्द्र जिनवर वली, गया सवि निराधार॥

[illegible]

आत-स्वरूप [illegible] तू, जो होय हिरदे ग्यान।
[illegible] [illegible] कीजिए [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]॥

अत वीतरागकी आज्ञा उठाने की तत्परता ही वीतराग की सेवा है, बाह्य-विनय में उन्हें प्रसन्न करने का विचार ही सेवा के परमार्थ का अज्ञान सूचित करता है।

अत सम्पूर्ण-रूप से क्रोधादि-भावशत्रुओं का नाश करके आत्मकल्याण के विशुद्ध मार्गकी राह जिन्होंने निःस्वार्थ-भावसे जगत के सामने उपस्थित किया है, ऐसे अनन्त उपकारी वीतराग परमात्मा की हो-उनकी आज्ञा के पालन स्वरूप-सेवा करना आवश्यक है।

—आ० क्र० १०

वीतराग की सेवा का आदर्श

किसीकी सेवा करने के पीछे उससे कुछ हासिल करने का आशय मुख्य होता है, पर राग-द्वेष के संस्कारों से रहित शुद्ध-निरंजन-निर्विकार परमात्मा बन कर संपूर्ण वीतराग-दशा के उच्च सिंहासन पर विराजे हुए श्री तीर्थंकर-परमात्माओं की सेवा-उपासना अपने जीवनमें क्या लाभ दे सकती है? यह प्रश्न वीतरागकी पूजा-उपासना करके जीवन को शुद्ध बनाने का शुभ-प्रयत्न करनेवाले मुमुक्षुओं को समझना अत्यंत जरूरी है।

हमारे अन्य धर्मों की मान्यता के आधार से तो 'प्रभु-परमात्मा जगत के समस्त व्यवहारों के नियंता होने के कारण'

वर बिना क्यों जान तमाशा? लूण बिन भोजन का खाना।
आतम-ज्ञान बिना तेम जाणो, जगमें सघरे अँधियारी॥

उनकी सेवा से तो—बहुत सी स्वार्थसिद्धियाँ [illegible] सकती है, परन्तु राग द्वेष की भावनाओं से निर्लिप्त रहनेवाले वीतराग—देवकी सेवा से संसार के स्वार्थों की पूर्ति में तो असमर्थ है पर, साधक को आत्म कल्याण के मार्ग में हाथ पकड़ कर सन्मार्ग पर ले जाने के कारण वीतराग देवकी सेवा का आदर्श जानना जरूरी है।

वह यह है कि

"अपनी ही आत्मशक्तियों का यथार्थ भान हो कर स्वयं पुरुषार्थ के मार्ग पर वीतरागता नामक शक्ति को लगा देना ही वीतराग की सेवा का यथार्थ आदर्श है।" जैसा कि उन्होंने अपने जीवन के प्रक्रियात्मक उदाहरण से जगत के सामने अद्भुत तथ्य उपस्थित किया है—कि "आत्मशक्तियों के अवलम्बन एवं यथार्थ ज्ञान के न होने के कारण अनादि काल से संसार में रहते भी दीन—हीन दशा में [illegible] जगत के बाह्य पदार्थों के लिए व्यर्थ दौड़—धूप मचा कर जीवन में [illegible] अपने ही हाथों से [illegible]।"

अतः विवेकपूर्वक अवसर—लाभ को पाकर अपनी शक्तियों का योग्य दिशा में लगाने का आदर्श वीतराग की सेवा द्वारा सिद्ध करना सहज है

—भा० कु० ११

जन्म धरी आ जगतमां, मेळवीओ शो सार ?।
हृदय विचारी आप तू, कर तु आतम सार ॥

卐 विवेक-बुद्धि

संसार के तमाम पदार्थों द्वारा लाभ और हानि प्राप्त हो सकते हैं, क्यों कि पदार्थों का उपयोग करनेवाला जिस ढंग से काम लेता है उसीके आधार पर अच्छा या बुरा परिणाम पाया जाता है।

अतएव बुद्धिमान लोग सामान्यतः किसी चीज को एकांत रूप से अच्छी या बुरी नहीं बतलाते हैं, अलबत्ता! स्थूल बुद्धिवाले बालजीवों की व्यवहार-भूमिका बनाये रखने वास्ते कुछ पदार्थों को सर्वश्रेष्ठ एवं अनिष्ट बताये हैं।

वस्तुतः उपयोग करनेवाले की सुन्दर विवेक-शक्ति के आधार पर बुरे पदार्थों द्वारा भी उत्तम लाभ प्राप्त कर लेने का अद्भुत फल प्राप्त हो सकता है, अन्यथा उत्तम पदार्थों के लाभ से भी वंचित होना पड़ता है।

अतः धर्म की आराधना के मार्ग पर चलनेवाले महानुभावों को चाहिए कि वे अपनी क्रिया व आचरणमें विवेक की गैर-हाजरी से जीवन को बिगाड़नेवाले रागादि विकारों से दूषितता पैदा होने न पावे इसका पूरा ख्याल रखें।

भा० कृ० १२

जब तेरा जगमें जन्म हुआ, जग हँसे तुम रोय।
अब करणी ऐसी करो, तुम हँसे जग रोय॥

卐 अपने आपको पहचानो !!!

विश्व के हर प्राणी की मानसिक भावनामें वास्तविक सुख-शान्ति की स्पृहा हरदम बनी रहती है एवं उसे पाने के लिए ही सब प्राणी दिन-रात छटपटाते रहते हैं।

परन्तु किसी चीज को पाने का असली तरीका यह है कि — जिस चीज को पाना चाहते हैं, उसके असली कारणों का यथार्थ ज्ञान पहले करना चाहिए, बादमें सुख की प्रवृत्तियों का ठीक ढंग से उन्हीं यथार्थ कारणों के साथ समन्वय करते हुए पूर्ण विवेक के साथ काम करना चाहिए।

संसारी प्राणियों के जीवन-व्यवहारमें इन दोनों बातों की त्रुटि रही हुई है, अतएव हरदम जिस-सुख शांति को चाहता रहता है, उस चीजसे अपने आपको कोसों-दूर ले जाता है।

जगत के पदार्थों में वास्तविक सुख-शांति है या नहीं? इस चीज का विवेक प्रथम होना जरूरी है।

विचारक प्राणीओं का गहरा अनुभव इस चीज को प्रमाणित करता है कि —

"अविवेक एवं मोह के कारण अज्ञानी प्राणी जीवन से सम्बन्ध रखनेवाले ज्ञान-विवेक एवं संयम को भूल कर वासना के प्रवाह

मूरख जाणे धन विना, चाले नहीं व्यवहार।
गये युधिष्ठिर-राम-नल, फिर भी चले संसार॥

में फस कर इच्छाओं की तृप्ति में ही सुख की कल्पना कर बैठता है, जगत्-चीज की कल्पना में ही जीवन का श्रेय मान लेता है।"

अत कहा जाता है कि - -

"अपने आपको पहचानो ! यानि कर्त्तव्यका भान पैदा करो"
श्री० कृ० १३

卐 मानव-देहका मूल्य

जगत के सर्व प्राणीओं में मनुष्य को सर्व-श्रेष्ठ माना जाता है, चूँकि -मानवमें बुद्धि एवं विवेक की संपत्ति अन्य प्राणीयों की अपेक्षा अधिक पाई है।

परन्तु किसी उत्तम चीज के मात्र मालिक बन जाने से जीवन में उस चीज का यथार्थ लाभ प्राप्त नहीं होता है, परन्तु मिली हुई चीज का सदुपयोग ही जीवन को उन्नत बनाता है, मानवदेह की प्राप्ति भी इसी पैमाने से सफल होती है, अन्यथा पशुओं से भी अधम-दशा में मानव पहुँच जाता है।

मानवदेह के द्वारा जीवन ऐसा उन्नतिशील एवं प्रगतिमय बन जाता है जिससे कि अपना व अपने समागम में आनेवाले तमाम प्राणीओं का जीवन परम आदर्श रूप बन जाता है।

यदि इस लक्ष्य को मानव भूल जाता है तो वास्तविकता के नाते मानव संसार की दृष्टि से बहुत नीचे गिर जाता है, प्रत्युत

अधिकार पामी जगतमां, करे न पर उपकार।
अधिकारमांथी 'अ' गयो, पाछळ रह्यो धिकार॥

शरीर-बुद्धि व मिट्टी हुई मामगी का मिथ्याभिमान अवनति की गहरी खाड़ में मानव को विशेष रूप से धक्के देता है।

देखिये! आधुनिक विज्ञान इस चीजको कैसे समर्थित करता है

आधुनिक वैज्ञानिक ढंग से मानव-देह का पृथक्करण लंडन के वैज्ञानिक डॉक्टर थॉमस लॉसन ने अपने सुन्दर प्रयोग पर गहरे अनुभवके बाद फैंकस्टन हॉस्पिटल समारोह में मानव-देह के विवेचनमें बताया था कि —

"ऊपर से सुंदर एवं मोहक दीखनेवाले इस मानव-देहमें सारभूत पदार्थ नीचे मुजब है :—

० १० गेलन पानी (८० रतल) कपड़े धोनेके ७ साबुन बने उतनी चरबी।	० १ छोटी मेख बने उतना लोहा।
० नौ हजार पेंसिल बने उतना कार्बन।	० १ कुत्ते के शरीरमें रहे हुए पिस्सुओं को खत्म कर दे उतना गंधक।
० २०० दीयासलाईकी काडी बने उतना फॉस्फोरस।	० मुर्गी के एक पिंजर को सफेद कर दे उतना चूना।

इन तमाम चीजों को बाजारमें बेची जाय तो उसकी किंमत पांच शिलिंग यानें ३॥) रुपये होती है।

धरम धरम सहु को करे, धरम न जाणे कोय।
ढाई अक्षर धरमका, जाणे पंडित सोय॥

सोचिए! संस्कार एवं सदाचार-शून्य मानव-देह किस कामका?

-श्रा० कृ० १४

卐 क्या यह उचित है?

० पूर्ण विवेक के साथ जो जानेवाली प्रवृत्तियाँ करने का जन्म सिद्ध हक मानवों को स्वतः प्राप्त है, पर उसका उपयोग जीवन के उत्थानमें करने के बजाय वासनाओं के पोषणमें किया जाय—क्या यह उचित है?

० मनमें उठनेवाले विचारों को विवेक के कपड़े से छाने ऐसे ही व्यवहारमें उतारने से अनर्थों की उत्पत्ति अनुभवमें आती है, फिर भी विचार एवं सांसारिक कामनाओं के पीछे अंध बन कर भावी परिणाम न सोचते हुए वे-समझकी प्रवृत्ति-खटपट करते रहना क्या यह उचित है?

० जिन चीजों को साथमें ले कर जन्म नहीं, मरते समय भी साथ चले नहीं, उन चीजों के पीछे पूरा जीवन लगाकर वास्तविक जीवन की भावना के लिए लापरवाही बताना—क्या यह उचित है?

-श्रा० कृ० ०))

इच्छाथी नहि सपजे, गोये विपद न जाय।
पण अज्ञानी जीवडो, कर्मबंध बहु थाय॥

आगम–परंपरा का इतिहास

विवेक बुद्धि को जागृत करने वास्ते श्री तीर्थंकर देव–परमात्मा की परम हितकर वाणी अत्यन्त उपयोगी होती है।

इसी लिए परम करुणालु गणधर भगवन्तोंने तीर्थंकर देव परमात्मा की अर्थ–गंभीर वाणी को सूत्र रूपमें गूँथ कर गीतार्थ मुनियों को उसका लाभ त्रिविध तापसे संतप्त प्राणीयों को यथोचित रूपमें देने का विधान फरमाया है।

तदनुसार प्राचीनकालीन गीतार्थ–भगवंतोने किस समय, किस प्रकार, अतिविषम परिस्थितियों को झेलते हुए जगत के कल्याणार्थ विश्वहितकर वीतराग–वाणी का संरक्षण एवं व्यवस्थित योजनाबद्ध प्राणीयों की योग्यता के अनुरूप उपदेशादि द्वारा वितरण करनेमें कितना अटूट परिश्रम किया था? कि जिसके फलस्वरूप हजारों वर्ष के बीत जाने पर भी तीर्थंकर भगवंतों की वाणी का मौलिक प्रवाह अल्पांशिक स्वरूपमें भी बहता हुआ जगत को अनिर्वचनीय लाभ देनेवाली आगम–परंपरा को आज विषमकाल में भी जीवित रख रहा है—

इस को समझने वास्ते नीचे का ध्यानपूर्वक पढ़ें और गहरा सोचें !!!

मोह विकल ए जीवकुं, पुद्गल मोह अपार।
पण इतनो समझे नहीं, इनमें नहीं कुछ सार॥

० आजसे २५१२ वर्ष पहेले जगत के कल्याणार्थ वीतराग देवकी सर्वहितकारिणी वाणी को गणधर भगवतोने सूत्रात्मक रूप दिया।

० वीर नि स १६० में **आचार्य श्री स्थूलिभद्रसूरिजी** की अध्यक्षता में **पाटलिपुत्र** मे बारह साल के भयकर दुकाल के बाद हजारों गीतार्थ एव शास्त्रज्ञानी मुनियो की अध्यक्षता में **प्रथम आगम-वाचना** हुई। जिसमें ग्यारह अगों का व्यवस्थित सकलन किया गया और बारहवें अगकी व्यवस्था की तैयारी कर उसे सुरक्षित रखने का प्रयास हुआ।

० वीर नि स २४५-से २९१ के कालमे **उज्जैन** मे **सम्राट सप्रति** की प्रेरणा और अभ्यर्थना से **आचार्य श्री आर्यसुहस्तिसूरिजी** की अध्यक्षता मे **दूसरी आगमवाचना** हुई।

जिसमे राज्यक्रांति एवं काल की विषमता को ले कर शिथिल बनी हुई आगमाभ्यास की परपरा को व्यवस्थित रूप दिया गया

—श्रा० सु० १

आगम परपरा का इतिहास (२)

निष्कारण करुणानिधान ज्ञानी भगवतोंने जगतके उद्धारार्थ निःस्वार्थ भावसे उपदेश आदि दे कर जो निःसीम उपकार किया है उसे समझने वास्ते आगमपरपरा एव श्रुतज्ञानकी पूँजी को गीतार्थ—

जैनागम वक्ता, ने श्रोता, स्याद्वाद शुचि बोध।
कलिकाले पण प्रभु! तुज शासन, वरते छे अविरोध॥

पूर्वाचार्योंने किस प्रकार जीवीत रक्खी? यह चीज अच्छी तरहसे समझने वास्ते ध्यानपूर्वक पढिये।

० वीर नि. स. ३०० से ३६० के करीब कलिंग (ओरीसा) देशाधिपति **महामेघवाहन महाराजा श्री खारवेल** की आग्रहपूर्ण विनंति से उस सम्राट के शुभ आमंत्रण पर [illegible] मयोजित प्रयत्नोंके फल स्वरूप **श्री कुमारगिरि पर्वत** पर [illegible] **श्री सुस्थितसूरिजी एवं आचार्यश्री सुप्रतिबद्धसूरिजी** के [illegible] मे तत्त्वार्थसूत्रकार **श्री उमास्वातिजी वाचक** आदि [illegible] हजारों मुनियों के संमेलन के रूपमें **तीसरी** [illegible] जिसमे ग्यारह अंग एवं दश पूर्वो का [illegible]

० वीर नि. स. ५९२ करीब [illegible] भारत) में पू. आ. **श्री आर्यरक्षितसूरिजी** ने [illegible] शिष्यों की मतिमन्दता के निमित्त को पा [illegible] अनुयोगमें विभक्त कर दिया। यह [illegible] जाती है।

० वीर नि. स. ८३० [illegible] **सूरिजी** की अध्यक्षता में मथुरा में [illegible] भयंकर बारहवर्षी दुष्काल के [illegible]

धन जोबन तन [illegible]
कृष्ण बलभद्र द्वारिका [illegible]

अनेक गीतार्थ आचार्य एव हजारों श्रमणों की हाजरी मे व्यवस्थित सकलन किया। यह पाँचवीं आगमवाचना हुई।

० वीर नि.स ९८० करीब पू आ.श्री देवर्द्धिगणिक्षमाश्रमण भगवत ने बारबार होनेवाले दुष्काळो के कारण नष्ट हो रहे श्रुतज्ञान की मौलिक परपरा को जीवित एव चिरस्थाइ रखने वास्ते अनेक गीतार्थ आचार्यो की समति एव निश्रामे तमाम उपलब्ध आगम साहित्य को लिपिबद्ध-पुस्तकारूढ करवाया यान ताडपत्रों पर लिखवाया।

यह छठी आगमवाचना हुई।

इसमे ८४ आगमो का सकलन हुआ, जिसमे से आज ४५ आगम व्यवस्थित रूपमे उपलब्ध हैं। —आ० सु० २

हितकर मार्गदर्शन

विश्वमे प्रत्येक प्राणी निरतर प्रवृत्तिशाल होता है, तमाम प्रवृत्तियों का मुख्य ध्येय भिन्न २ रूपसे भी वास्तविक शांति प्राप्त करने का होता है, परन्तु प्रवृत्ति एव ध्येय के बीच अज्ञानदशा की गहरी खाई को समझदारी एव ज्ञानी सद्गुरु के मार्गदर्शन के बल पर व्यवस्थित होनेवाली सुसंगत प्रवृत्तियो से भरी न जाय तो घाणीमे जुते हुए बैलकी तरह तमाम प्रवृत्तियाँ केवल परिश्रम रूप बन जाती हैं।

अखियां खुली है जब लग, तब लग बाहरु सब कोय।
अखियाँ मींचाणा पीछे, और ही रग का होय॥

इस सनातन सिद्धान्त को समझते हुए ज्ञानी महापुरुषोंने ससार-को हितकर मार्गदर्शन दिया है कि —

मुमुक्षु! यदि तेरे जीवनमे सच्ची शांति की स्पृहा जगी हो तो इधर-उधर भागा दौड़ी न कर! जरा दिल को स्थिर कर!!!

जिस चीज़के लिए तु छटपटा रहा है, वह चीज़ तेरे पास—अन्य तमाम पदार्थों की अपेक्षा अत्यधिक नजदीक ही भरी पडी है, तेरा मानस बाहरी पदार्थों की लुभावनी चाह मे फस कर उन्हें पाने की, भोगने की, एव उनसे जीवन को समृद्ध बनाने की छटपट से कभी फुरसद नहीं पाता है!!! घरमें अखूट खजाना भरा पडा है फिर भी उसे देखने व सम्हालने की सावधानी के अभावमे दीन-हीन एव दरिद्र बन हुए गर्भश्रीमत श्रेष्ठिपुत्र जैसी तेरी विषम दशा हो गई है!!!

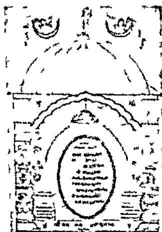
अतः जरा गहराई से अपने-आप की प्रवृत्तियों को सम्हाल!!! अन्यथा अज्ञान-अविवेक एवं उर्मियों की जानदार प्रवृत्तियाँ तुम को विषम पश्चात्ताप की आगमे धकेल देगा!!!

आ० मु० ३

रूपे देवकुमार सम, देखत मोहे नर-नार।
सोही नर खिण एकमां पल-जल होवे छार॥

महामांगलिक श्री नमस्कार-महामंत्र

श्री नमस्कार-समो मंत्र



न भूतो न भविष्यति

श्री नवकार समो जगि, मंत्र न यंत्र न अन्य ।
विद्या नवि औषध नवि, एह जप ते धन्य ॥

सर्व श्रुतमां वडो ए प्रमाण्यो ।
महानिशीथे भाख्यो परि वखाण्यो ॥



श्री नवकार महामंत्र महिमा

पढो मंत्र नवकार, सदा संकट उगारे।
पढो मंत्र नवकार, ताव तेजरो निवारे ॥१॥

पढो मंत्र नवकार, भाग्यभंडार हुए भरपूर।
पढो मंत्र नवकार, कायम्बन हुवे शूर ॥२॥

पढो मंत्र नवकार, दुःख आपदा टाळे।
पढो मंत्र नवकार, मोक्षमारगगु आळे ॥३॥

जपीए मंत्र जिनवरतणो, दिन २ जग अधिको चढे।
नवकार मंत्र पढ्या पाठे, प्राणी ओर मंत्र काहे कु पढे ॥४॥

पिंगल पढयो न पारसी भळ्यो न तर्कग्रंथ।
नवकार ना नव पद थका, सदा करो आनंद ॥५॥

सात अक्षर ए पढो, पढो पच चित्तलाय।
सात सागरनो आउखो, पढत पाप सब जाय ॥६॥

काचा सगपण कुटुंबना, मिल मिल बिछडी जाय।
साचो सगपण धरमका, सो अविचळ मेलो थाय ॥७॥

च्यारु सरणा ए सही, और न सरणा कोट।
जे नर-नारी आदरे, ते अक्षय-अमर पद होट ॥८॥

[अजमेरसे उपलब्ध प्राचीन हस्तलिखित प्रकीर्ण पत्रोंमेंसे.]

卐 श्री नवकार महामंत्र महिमा।

राग–द्वेष एवं अज्ञान के चक्र पर उठनेवाले पुरुषार्थ के फंदे से आत्मा को छुडा कर यथार्थ चित्तशुद्धि का गौरवशाली होनेवाली सब प्रवृत्तियों को विवेक के आधार पर बंद कर देनेमें ही जीवन यथार्थ सफलता है।

वास्तविक जीवनशुद्धि के इस परमार्थ को प्रत्येक जैन प्राप्त कर सकें इस लिए **श्रीनमस्कारमहामंत्र** का आबाल–गोपाल सर्व साधारण प्रचार एवं उपयोग व्यापक सुलभ होना जरूरी ज्ञानीयोंने बताया है, और देखा भी जाता है कि आज अन्य चालों की अपेक्षा इस महामन्त्र का प्रचार अधिक है।

परंतु महामांगलिक **श्रीनवकार–महामंत्र** के असली स्वरूप एवं उसके रहस्य का सामान्य जानकारी न होनेसे इस महामंत्र का उपयोग जीवन में कोई खास परिवर्तन नहीं लाता, यह परिस्थिति आज करीब सार्वत्रिक है, इस को सुधारने वास्ते नीचे की बात पर ध्यान देना जरूरी है।

"जीवनमें अत्यावश्यक बाह्य पदार्थों की सामग्री का जुटाव अपनी आत्मशक्ति के सदुपयोग में से पैदा होनेवाली चैतन्यशक्ति (पुण्यबल) के बल पर ही होता है।

पंच परमेष्ठी छे जग उत्तम, चौद पूरवनो सार।
गुण जस कहेता पार न आवे, महिमा जास अपार॥

यद्यपि यह शक्ति व्यावहारिक पुरुषार्थ के द्वारा प्राप्त होती है, तथापि व्यावहारिक शक्ति के सदुपयोग की विकसित दशा में आत्म पुरुषार्थ भी सिद्धिदायक हो जाता है, अन्यथा बहुत छटपटाने पर भी कुछ नहीं बन पाता है।

अतः अपनी प्रवृत्तियों को सदा आत्मशक्ति के दुरुपयोग (हिंसा, झूठ, चोरी, आदि प्रवृत्तियाँ) से बचाते हुए हो सके उतना सत्संग, गुणानुराग, परोपकार, सच्चिंतन आदि द्वारा थोड़ा--बहुत भी आत्मशक्तियों का मौलिक सदुपयोग करते रहना।

इस पथ्य के परिपालन का विवेक रखकर श्री नवकारमहामंत्ररूप औषध का सेवन कुछ दिनों में ही पूरे जीवनको कायापलट कर देता है।

इस महामंत्र का स्मरण करनेवालों को एक बात और भी याद रखना जैसा है कि –

"भूल करके भी कभी परनिंदा, परचर्चा एवं परदोष निरीक्षण के मार्ग पर वृत्तियों को जाने न दीजिये, इन कामों के लिए "पर प्रवृत्तौ बधिरान्धमूकः" बन कर "अपने आपको मैं मौलिक मंत्र के महान कार्य में जुटा हुआ हूँ"–की भावना को सुदृढ़ रूपसे हृदय में जमा लेना चाहिए।

इस प्रकार **श्री नमस्कार** महामंत्र का किया हुआ स्मरण आत्मशक्तियों की निसरी हुई अपूर्व ताकात पैदा करता है।

आ० सू० ४

रतन तणी जेम पेटी भार अल्प बहु मूल्य।
चौद पूरवनो सार छे, मंत्र ए तेहने तुल्य॥

卐 महापुरुषों का जन्म

आज वह पवित्र दिन है। जिस दिनकी मांगलिक-रात्रि को बारह बजे इस अवसर्पिणी काल के बाईसवें तीर्थंकर बाल-ब्रह्मचारी परमपूज्य श्री **नेमिनाथ प्रभु** का जन्म हुआ था।

संसारमें वैसे तो प्रतिसमय अनंतानंत जीव जन्मते-मरते रहते है, परन्तु सर्वसाधारण जन्म-मरण के कार्य में भी अनोखी पवित्रता एवं मङ्गलमयता पैदा कर के जगत के सामने आदर्श जीवन की महिमा को प्रस्तुत करनेवाले महापुरुषों का जन्मसाधारण भी जीवन-प्रमत्त अज्ञान-मूढ संसारी प्राणीओं को एक अतिविशिष्ट जीवन-संदेश सुनाता है

वह यह है। जरा ध्यानपूर्वक पढ कर भीतरी कानोंसे इस संदेश को सुन कर पवित्र बन।

"भव्यात्मा! तुम्हारे जीवन के प्रारंभकाल की बुनियाद में विशिष्ट संस्कारिता रूप अमूल्य खाद-खातर का होना जरूरी है, जिससे कि सांसारिक दृष्टि से अतिसामान्य-रूप में माना जानेवाला इस भौतिक शरीर के जन्म का प्रसंग यह सूचित कर सके कि --शरीर में विराजित अनंत-गुण-निधान चैतन्य-स्वरुप आत्मा के विकासक्रम का व्यावहारिक स्वरुप पा कर अपने संपर्क में आनेवालों से लगा कर सारे

देखत सब जग जात है, थिर न रहे इहां कोय।
इसु जाणी भलुं कीजिए, हैये विमासी जोय॥

विश्व को यथाशक्ति अपनी विकसित अनादि गुण संपदाओं ज्ञान पहुंचाने की क्षमता के द्वारा जीवन यथार्थ स्पर्श सफल—प्र व बनगा है।

—श्रा० मु० ५ (१ का क्षय)

मनुष्य अवश्य मर्यादि नित्य उपयोग कर के अपूर्व सम शांति पाने का अद्भुत नुस्खा सुखोपयोगिपाक

स्याईयों की नींव

नाम	तोला	नाम	तोला
दुःख की जड़	१०	धैर्यावलेह	२०
नम्रता का चूर्ण	१०	निर्पेक्षिता का अर्क	१५
धर्म रुचि का मरर	५	संतोष का ,,	१६०
श्रद्धा का तेल	१००	सहनशीलता का ,,	२०

और पवित्रता की सामग्री—तोला ५०

दवाई बनाने की विधि.—पहले स्वाध्याय में दुःख की जड़ को श्रद्धा के तेल में डालकर मन्द रूप कढ़ाई में समभाव की आग से पका कर खूब पक जाने पर नीचे उतार कर समय नीचे बाद के अर्क और धर्म रुचि का मरर मिलाएं, बाद में सद्भावना के चमचे से हिला कर दृढ़निश्चय की थाली में डाल कर उसमें पवित्रता की सामग्री मिलाइये।

जे यत्ने पादुस गुण, जेहवी पाये माळीपार।
अंतर्य पदे निज आतमा तत्र उपाय! मे वात॥

दवाई सेवन करनेका तरीका:–सुबह–शाम **नम्रता** का चूर्ण लेकर **धैर्यविलेह** चाट कर इस दवाई का नियमित सेवन करें

दवाई का असर:–इस दवाई के सेवन से कुछ दिनोंमें ही तमाम प्रकार के दुःखोंका विनाश होकर अद्भुत सुख और शान्ति का अनुभव चमत्कारिक ढंग से होगा।

दवाई का परहेज:–इस दवाई के सेवन करनेवाले को **मिथ्याचार, अविवेक, विषय–लालसा, पुद्गल–प्रेम, दंभ एवं कषाय** का परहेज रखना जरूरी है।

इन दवाइयों के बनाने के परिश्रम से बच कर इस दवाई के अपूर्व लाभसे जो लोग वञ्चित रह जाते हैं उन भव्यात्माओं के हितार्थ नीचे लिखे पते पर यह दवाई बना–बनाई तैयार पैकेट के रूपमें **एकनिष्ठ एवं सुदृढभक्ति** की नाम की कीमत लेकर मुफ्त ही वितरित की जाती है जरूर इसका लाभ उठावें

शुद्ध–संयमपालक फार्मसी!
प्रो. प्रभु आज्ञाधारी सद्गुरु
ठि. धर्मविलास चौक
पो. आत्मारामपुर (देश–अलख)

धर्माराधक मेडिकल फार्मसी!
प्रो. सुदेव–सुगुरुभक्त आराधक
ठि. सत्पथ बाजार
पो. आत्मारामपुर (देश–अलख)

—श्री० सु० ७

धरम–धरम सहु को करे, धर्म नवि जाणे मर्म।
धर्म जिनेश्वर चरण ग्रह्या पछे, कोइ न बांधे कर्म॥

दुःखौषधिपाक दवाईका रहस्य

जीवन में अपूर्व शान्ति, एवं आनन्द प्राप्त करने के लिए दुःखों को पुराने कर्मों की निर्जरा हो रही है, ऐसा समझ कर हँसते-मुँह सहन करना चाहिए।

साथ ही आत्मा के गुणों को, ढाँककर रहे हुए कर्म के आवरण को हटानेवाले दुःखों को सुख स्वरूप प्राप्ति में सहायक मानने का एवं समभाव का बल बढ़ाना जरूरी है।

तथा क्षमा, नियमितता और विवेक के साथ हर प्रवृत्ति करना उचित है, संतोष की प्रधानता रखते हुए धर्म की रुचि को बढ़ाकर सद्भावनाएँ तथा सुदृढ़ निश्चयपूर्वक विचार एवं आचार की पवित्रताको विशिष्ट रूपसे अपनानेका प्रयत्न करना चाहिए।

हमेशा पूर्वोक्त गुणों के विचार के साथ अन्तर्निरीक्षण करते रहने से आत्म-शक्तिका बल बढ़ता है, फलतः दुःखों का क्रमशः क्षय होता रहता है।

परन्तु यह सब करने में नम्रता और धैर्यकी आवश्यकता है, अन्यथा आत्मा के गुणोंका थोड़ा-बहुत भी विकास मिथ्याभिमान या मानसिक क्षुद्रता के कारण रुक कर आन्तरिक एवं परम्परागत बाह्य दुःखोंकी वृद्धि ही हो जाती है।

समझु खड़ा है चौकमें, दोनों बाजु गैर।
नहीं किसीसे दोस्ती, नहीं किसीसे बैर

इस प्रकार तमाम दु:खों का नाश इस "सुखौपधिपाक" दवाईसे अचूक–रूपमें हो करके रहता है

–भा० पृ० ८

धर्म या व्यापार ?

आर्य संस्कारों से वासित प्राणी अल्पाधिक रूपमें भी धर्मकी आराधना के लिए सदा तत्पर बना रहता है, परन्तु वास्तविक धर्म के स्वरूप का भान सद्गुरु द्वारा न मिलने के कारण कई लोग धर्म की प्रवृत्ति करते हुए भी उसका यथार्थ फल नहीं पाते हैं

अतः अनन्तानंत पुण्यराशिके बल पर वीतराग–प्रभु के शासनको पाये हुए अनुपम सौभाग्यशाली पुण्यात्माओं को तो इस चीज का विचार करके प्राप्त हुए धर्म की आराधना के मौके का लाभ उठा लेने की सतर्कता रखनी उचित है, अन्यथा धर्म की आराधना का मुख्य आदर्श अशुभ संस्कारों की विषम छायामें सहज ही विस्मृत–सा हो कर "मैं ऐसा करूँ तो ऐसा हो जाय" आदि सौदेबाजी–या व्यापारी पद्धति से सकामभावना के निकृष्टतम स्वरूप की खाड़ में गिरने का मौका आ लगता है, फलतः जीवन का आदर्श अपनाने वास्ते धर्म का आराधना के असली स्वरूपका यथोचित भान पाने की हैसियत भी गुम हो जाती है

विवेकी, मुमुक्षु एवं विचारशील धार्मिकों का यह पवित्र कर्तव्य

ज्ञानी शु ज्ञानी मिले तो, हीरानी लूटालूट ।
ज्ञानी शु अज्ञानी मिले तो, चमणी माथाकूट ॥

बन जाना चाहिए कि—वे हरदम अपनी आन्तरिक वृत्तियों में संस्कारों के व्यामोह के कारण उठनेवाली मौजशाही-व्यापारी ढंग से मात्र ऐहिक—तुच्छ फल की प्राप्ति की ही गरज रखते हुए अनन्य साधारण लोकोत्तर धर्मकी महिमा को घटाने का दुस्साहस न करें

प्रत्येक धर्म की क्रिया जीवन—शुद्धि के आदर्श को प्रस्तुत कर यथाशक्य निष्काम भावसे करनी चाहिए —श्रा० सु० ९ (प्रथम)

सच्ची आज़ादी

जगत का प्रत्येक जीव स्वतंत्रता को सच्चे दिल से चाहता है, किसी की आधीनता में रहना किसी जीव को इष्ट नहीं होता, फिर भी संसार में देखते हैं कि छोटे–बड़े तमाम जीवों को सुख–शांति के लिए तड़फते हुए भी अपने–आपकी हैसियत के अनुसार मौलिक शक्तियों का विकास न होने से पराई शक्तियों का उधार लेने वास्ते इच्छा के न होते भी शक्तिशाली अन्य प्राणीयों के आधिपत्य में मजबूरी से भी रहना पड़ता है, सचमुच में ऐसा क्यों होता है? यह दुनिया के लोगों को मालूम नहीं होता है, अत एव आज़ाद रहने का विचार मात्र भावना के क्षेत्र में ही सीमित रह जाता है

वस्तुतः आज़ादी का मतलब यह होता है कि —"वासना एवं विकारों की परवशता ही वास्तविक गुलामी है, और आत्म–संयम, वासना निग्रह, इंद्रिय–दमन द्वारा अपनी वृत्तियों को काबू में रख कर यथायोग्य प्रवृत्ति करना"

पप्यो तो परख्यो नहीं, दशो कीधो दूर।
भला शु लागी रह्यो, नन्नो रह्यो हजूर॥

शब्द व्युत्पत्ति की दृष्टिसे आजादी शब्द जिन दो शब्दों का बना है व दो शब्द 'आझ+आदी'-का भी यह ही रहस्य है कि आझ—यानि आत्मा की आदि—प्रारंभ या मुख्यता जिसमें है अर्थात आध्यात्मिकता के संस्कारों का लक्ष्य रखकर यथायोग्य प्रवृत्ति ही वास्तविक आझादी है —श्या० मु० ९ (द्वितीय)

पंद्रह अगस्त का संदेश

भारत की जनता स्वतंत्रता का लक्ष्य में रख कर आज खुशीए मना रही है, परंतु उसके परमार्थ का सचमुच नहीं समझ सकने के कारण स्वतंत्रता के मिथ्या मदमें बिना किसी नियंत्रण के स्वच्छंद रूपमें यथेच्छ विचार एवं प्रवृत्ति करनेवाले तथाकथित स्वतंत्र आधुनिक भारत के नवयुवक अपने आप के जीवन को अव्यवस्थित बना रहे हैं—यह बात अत्यंत शोचनीय है

अपने विचारों की विवेक एवं समझदारी के गलण से छान कर यथोचितता को नापने की स्वतः सिद्ध ताकत खुदमें पैदा न हो, तब तक पाई हुई स्वतंत्रता जीवन को उन्नत नहीं बना सकती है

अतः जीवन को यथाशक्य विवेकी महापुरुषों की निश्रामें संयमी बनाते हुए शास्त्र एवं सदाचार की मर्यादा की वफादारी रखते हुए अपने मौलिक विचारों की पूर्ण स्वतंत्रता पाई जाय तब आधुनिक स्वतंत्रता—आझादी का मनाये जानेवाला त्यौहार सफल हो सकेगा —१५/८/१९५६

चेतन! तें ऐसी करी, जैसी करे नहीं कोय।
विषया—रसने कारणें, सर्वस्व बैठो खोय॥

भयंकर अज्ञान

कोई भी काम करते समय हमेशा अंतिम परिणाम सोचा जाता है, कामचलाउ छोटे-बड़े मध्यवर्त्ती नफा-नुकसानो से किसी चीजका स्वरूप नहीं पहचाना जाता है

इस दृष्टिकोण से अज्ञान-मूढ़ प्राणीओं की अयुक्तापूर्वक की जानेवाली व्यावहारिक प्रवृत्तियों को जाँचने पर स्पष्ट प्रतीत होता है कि —

भौतिक पदार्थों के दीखनेवाले लुभावने बाह्य स्वरूप की चकाचौंध मे भ्रमित-से बन कर अज्ञानी प्राणी व्यावहारिक प्रवृत्तियों का ताता लगाए बैठे हैं, फलतः प्रवृत्तिया के जटिल फंदेमे फंस कर विचार शक्ति एवं समीक्षकवृत्ति करीब २ गँवा कर कल्पना एवं मानसिक स्वप्न सृष्टि के ही आधार पर मनघडत ध्येयों की पूर्ति के नाम मिली हुई शक्तियाँ का दुर्व्यय करते हुए गुमराह बन जाते हैं

वस्तुतः आंतरिक शक्तियों के यथायोग्य सदुपयोग के अभाव के कारण ही दुनिया के तमाम जीव अपनी इष्ट-साधना में कराब २ अपूर्ण ही बने रहते है

जीवन की तमाम प्रवृत्तियों के लक्ष्य के विषयमें रहा हुआ यह भयंकर अज्ञान पूर्ण विवेक और गहरी विचारणा के बल से हटाने का सत्प्रयत्न करना चाहिए —आ० सु० १०

सुख के माथे पत्थर पडो, जामे विवेक नसाय।
बलिहारी उस दुःख की, पल-पल मद्य सुमराय

बिंदुमें विराट

जलकी एक बूँदमें विराट विश्व !

देखिये ! पढिये !

सोचिए ! समझिये!



एक जलबिंदुमें रहे-हुए
३६४५० सूक्ष्मजन्तुओंका चित्र



इसे देख कर चकित मत !

अहहहह

जल की एक बूँदमें ३६४५० जीव ?

इसे आप नवकथा की त्यां कल्पित भी न मानिए !

परन्तु आधुनिक विज्ञानकी खोजद्वारा प्रमाणित यह एक वैज्ञानिक सत्य है

इलाहाबाद गवर्मेंट प्रेस प्रकाशित "सिपपदार्थविज्ञान" नामक पुस्तकमें यह चित्र प्रकाशित है

इस पुस्तकमें प्रख्यर वैज्ञानिक डॉ. स्कॉसेबीने सूक्ष्मदर्शक यंत्र (माइक्रोस्कोप) से मार्शन किये हुए प्रयत्न का वर्णन है, डॉक्टर सा० ने सूक्ष्मदर्शक कांच से मार्शन अपनी बुंदकी ओरवण देखकर और गिनती लगाकर जाहिर किया है कि —

"सामान्यत: जलकी एक बूंद
एक विराट विश्व"

अर्थात्—उसमें छत्तीस हजार चारसो पचास (३६४५०) सूक्ष्म जंतुओं का समूह (एक जाट स कण्य गिनना) होता है !

रात गमाई सोवते, दिवस गमायो खाय।
हीरा जैसा मनुष्यभव, कौड़ी बदले

इस प्रकार आधुनिक विज्ञानने जलके मात्र एक बिंदुमें ३६४५० सूक्ष्मजन्तुओं का समूह का होना जो प्रमाणित किया है, उसे जानकर विश्ववत्सल दिव्यज्ञानी महापुरुषों की जलबिंदु में असंख्य जलरूप शरीरात्मक जीव होनेकी बातको सुदृढ–विश्वास एवं परम आदर-भाव से मान्य करना विवेकीयों का कर्त्तव्य है और इस कर्त्तव्य को अदा करनेकी जवाबदारी के नाते नीचे की बातों पर पूरा ध्यान दीजिये ! ! !

० जरूरत हो उतना ही परिमित जल स्वच्छ–मोटे कपडे से छानकर काम में लाने का विवेक रखिए

- बेफिजूल जलका अपव्यय मत करिए !
- स्नानादिक के वास्ते नल वैसे ही खुल्ला रखकर अमर्यादित जल का विनाश न करिए !
- "वस्त्रपूत पिवेज्जल"– "पाणी पीजे छानकर और गुरु कीजे जानकर" –आदि लोकोक्तियों के परमार्थ को ख्याल में रखकर पानी का उपयोग छान कर के ही सोच–समझकर करिए !

सुखमें समरण सहु करे, दुःखमें करे नहीं कोय।
जो सुखमें समरण करे, तो दुःख काहेको होय ॥

• नदी–तालाब आदि में पशु की ज्यों गिरकर व्यक्तिगत मौज आनंद लूटने के नामपर पानी को मंथुब्ध न कीजिए !

• "आत्मवत्सर्वभूतेषु॰" की शिक्षा को ध्यान में रखकर जलका अपव्यय कर के असंख्य सूक्ष्म-जन्तुओं को त्रास मत दीजिए !

• इस विशाल जगत के छोटे–मोटे तमाम जीवों से बढ कर मानवने विशिष्ट बुद्धि और शक्तियें पाई है, उनका सदुपयोग अपने से छोटे जीवों के प्रति हमदर्दी–पूर्ण बर्ताव रखने में कीजिये !

• विवेक बुद्धि, समझदारी, इन्सानीयत एवं मानवता का निचोड निर्बल क्षुद्र जन्तुओं को सत्रस्त नहीं करने मे है.

आज की दुनिया दुःख–संत्रस्त बहुत है, उस में ऐसी छोटी–बड़ी कई जीवहिंसायें भी जवाबदार है, असहाय–गरीबों की हाय कभी निष्फल नहीं जाती है,

वर्तमान काल में सुखी होने का व्यावहारिक एवं सुगमतर उपाय यह ही है कि–जितना बन उतना दूसरों के प्रति अहिंसक बर्ताव रखा जाय'

दुःखी देख करुणा रहे, अवगुण देख तटस्थ।
गुणीजनों को वंदना मैत्रीभाव समस्थ !!"

जरा सोचने जैसी बात है कि–जब हमारे में किसी जीव–सृष्टि को बनानेकी शक्ति नहीं है तो उसे नष्ट–भ्रष्ट कर बिगाड देने का क्या हक है? और बिना वजह ऐसी अनधिकार चेष्टा करने को यदि हम तैयार होते हैं, तब इस अनर्थकारी हमारी कुचेष्टा के जवाब स्वरूप हम अपनी जान पानीके उन जीवों को–प्रत्येक को बदले में देना पडेगी अर्थात्–उनके हाथों से हम भी निष्कारण मौत के घाट उतरने को विवश होना पडेगा, सोचिए! खामोश हो कर गूढ विचार करिए! कि अपनी मूलके जरा सी गलती आगे पर कैसा विराट स्वरूप ले लेगी

इसलिए बुद्धिशाली मानव का प्रथम और मुख्य कर्तव्य बन जाता है कि–सोच–समझ कर अपनी कार्य व्यवस्था ऐसी बनावें ताकि भावि परिणाम में अनर्थ पैदा कर निष्कारण पश्चात्ताप न करना पडे

यह पढ कर सोच–समझ के साथ प्रतिज्ञा लीजिये कि—

१ बेफिजूल पानीका अपव्यय नहीं करेंगे

२ बिना छने पानी काम में नहीं लायेंगे.

३ अचित्त पानी पीना सबसे अच्छा है.

संसार में सुख कहाँ?

निर्जन जंगल में बरगद के पेड की दो चूहों द्वारा काटी जाने वाली शाखा पर लटका हुआ आदमी नीचे गहरे–कुँए में बडा साँप

वीस बसाना जे नरा, कोइ नहीं जम वरा।
पण नारी–संगते नेहने, निश्चे चढे कलंक॥



जरा सोचने जैसी बात है कि –जब हमारे में किसी जीव–सृष्टि को बनानेकी शक्ति नहीं है तो उसे नष्ट–भ्रष्ट कर बिगाड देने का क्या हक है? और बिना वजह ऐसी अनधिकार चेष्टा करने को यदि हम तैयार होते हैं, तब इस आर्थकारी हमारी कुचेष्टा के अर्थात् स्वरूप हम अपनी जान पानीके उन जीवों को प्रत्येक को बदले में देना पडगी अर्थात्--उनके हाथों से हम भी नि कारण मौत के घाट उतरने को विवश होना पडेगा, सोचिए! खामोश हो कर कुछ विचार करिए! कि अज्ञान मूलक जरा सी गलती आगे पर कैसा विराट स्वरूप ले लेगी

इसलिए बुद्धिशाली मानव का प्रथम और मुख्य कर्तव्य बन जाता है कि--सोच–समझ कर अपनी कार्य व्यवस्था ऐसी बनावे ताकि भावि परिणाम में अनर्थ पैदा कर निष्कारण पश्चाताप न करना पड़े।

यह पढ कर सोच--समझ के साथ प्रतिज्ञा लीजिये कि—

१ बेफिजूल पानीका अपव्यय नहीं करेंगे

२ बिना छने पानी काम नहीं लायेंगे-

३ अचित्त पानी पीना सबसे अच्छा है.

संसार में सुख कहाँ?

निर्जन जंगल में बरगद के पेड की दो चूहों द्वारा काटी जाती शाखा पर लटका हुआ आदमी नीचे गहरे–कूँए में बडा साँप

वीस वमाना जे नरा, कोई नहीं अम वक।
पण नारी–सगते नेहने, निश्चे चढे फलक॥

मधुबिंदुसरीखो विषय नीरखो, जोई पारखो निचहु ।
नर जन्म हार्यो मोह धार्यो, पिंड भार्यो पापहु ॥



मधुबिंद दृश्य (संसार स्वरूपदर्शन)

जरा सोचने जैसी बात है कि जब हमारे में किसी जीव-सृष्टि को बनाने की शक्ति नहीं है तो उसे नष्ट-भ्रष्ट कर बिगाड़ देने का क्या हक है? और बिना वजह ऐसी अनधिकार चेष्टा करने को यदि हम तैयार होते हैं, तब इस अनर्थकारी हमारी कुचेष्टा के जवाब स्वरूप हम अपनी जान पानीके उन जीवों को—प्रत्येक को बदले में देना पड़ेगी अर्थात्—उनके हाथों से हमें भी निष्कारण मौत के घाट उतरने को विवश होना पड़ेगा, सोचिए ! ध्यान से हो कर कुछ विचार करिए ! कि अज्ञान मूलक जरा सी गलती आगे पर कैसा विराट स्वरूप ले लेगा।

इसलिए बुद्धिशाली मानव का प्रथम और मुख्य कर्त्तव्य बन जाता है कि—सोच-समझ कर अपनी कार्य व्यवस्था ऐसी बनाए ताकि आखिर परिणाम में अनर्थ पैदा कर निष्कारण पश्चात्ताप न करना पड़े

यह पद पर सोच-समझ के साथ प्रतिज्ञा लीजिये कि—

१ बेफिजूल पानीका अपव्यय नहीं करेंगे
२ बिना छाने पानी काम में नहीं लायेंगे
३ अचित्त पानी पीना सबसे अच्छा है।

संसार में सुख कहाँ?

निर्जन जंगल में बरगद के पेड़ की दो चूहों द्वारा काटी जाती पतली शाखा पर लटका हुआ आदमी नीचे गहरे-कुँए में पड़ा साँप

वीस विसाला जे नरा, कोइ नहीं जग बंक।
पण नारी-सगते नेहने, निश्चे चढ़े कलंक॥

और चार छोटे साँपों—की फूँकार एवं मारने के लिए आये हुए हाथी द्वारा पेड़ के हिलाने के कारण शहद की मक्खीयों के बड़े तेज चटकों से होनेवाली भयंकर मनोव्यथा में भी शहद के एक–दो बूँद के स्वाद में अपने तमाम दुःखों को भूल जाय तो वह जैसी मूर्खता है

उसी तरह अज्ञानी जीव संसार रूप जंगलमें सुख–प्राप्ति के सच्चे मार्ग को भूल कर वृद्धावस्था रूपी राक्षसी एवं मौत रूप हाथीसे बचने हेतु जीवनरूप बरगद के पेड़ की शाखा को पकड़ कर लटकने लगा, जो कि शाखा काले–सफेद चूहे के समान रात–दिनसे कटती जा रही है, उसी शाखा के नीचे दुर्गति रूप भयंकर बड़ा कूँआ और उसमें नरक–गति रूप बड़ा भयंकर अजगर और क्रोध–मान–माया–लोभरूप चार साँप फूँ–फूँकार मार रहे हैं, अनेक प्रकार की मानसिक चिंता रूप शहद की मक्खीयाँ परेशान कर रही हों, इतना होने पर भी सांसारिक पदार्थों के द्वारा विषयों के उपभोगसे काल्पनिक–असद्रूप सुखरूप शहद के स्वाद में लुब्ध हो कर अपने को सुखी मानलेने की अक्षम्य गलती संसार के प्राणी दोहराते रहते हैं।

कहिये तो ! कहाँ है संसारमें सुख ? सिवाय दुःख, दुःख और दुःख के सिवाय है क्या इस दुनियामें !!!

—आ० सु० १२

पाप-घट पूरण भरी, तें लियो सिर भार।
ते किम छूटीष जीवडा !, न कर्यो धर्म लगार॥

और चार छोटे साँपों–की फुँकार एवं मारने के लिए आये हुए हाथी द्वारा पेड़ के हिलाने के कारण शहद की मक्खीयों के बड़े तेज़ चटकों से होनेवाला भयंकर मनोदशाम भी शहद के एक–दो बूँद के स्वादमे अपने तमाम दुःखों को भूल जाय तो वह जैसी मूर्खता है,

उसी तरह अज्ञानी जीव संसार रूप जंगलमे मुक्ति–प्राप्ति के गम्य मार्ग को भूल कर वृद्धावस्था रूपी राक्षसी एवं मौत रूप हाथी से बचने वास्ते जीवनरूप बरगद के पेड़ की शाखा को पकड़ कर लटकने लगा, जो कि शाखा काल–रूप चुहे के समान रात-दिवस कतरता जा रही है, उसी शाखा के नीचे दुर्गति रूप भयंकर बडा कूँआ और उसमे नरक–गति रूप बड़ा भयंकर अजगर और क्रोध–मान–माया–लोभरूप चार साँप फूँ–फूँकार मार रहे है, अनेक प्रकार की मानसिक चिंता रूप शहद की मक्खीयें परेशान कर रही हो, इतना होने पर भी सांसारिक पदार्थों के द्वारा विषयों के उपभोगमे काल्पनिक–असद्रूप सुखरूप शहद के स्वाद में लुब्ध हो कर अपने को सुखी मानने की असाध्य गलती संसार के प्राणी दोहराते रहते है।

कहिये तो! कहाँ है संसारमे सुख? सिवाय दुःख, दुःख और दुःख के सिवाय है क्या इस दुनियामे!!!

–आ० सु० १२

पाप-घट पूरण भरी, तैं लियो सिर मार।
ते कैम छूटीश जीवड़ा!, न कर्यो धर्म लगार॥

श्रावक-कुल की महत्ता

किसी चीज को पाने के लिए उस के यथायोग्य स्वरूप की जानकारी एव उसे पाने वास्ते यथोचित प्रवृत्ति का शुभ समन्वय होना जरूरी है।

जगत के छोटे-बडे तमाम प्राणी वास्तविक सुख-शांति का अत्यंत उत्कंठा रखते हुए भरसक प्रयत्न एव खूब छटपटाहट करते हुए भी सुख-प्राप्ति के अनुकूल या प्रतिकूल साधनों का यथार्थ विवेक की अपूर्णता के कारण स्वस्थता ही नहीं पा सकते हैं, बिना बुलाई अशांति-विह्वलता को तनिक भी दूर नहीं कर सकते हैं। सुख-शांति के अरमान मात्र दिवा-स्वप्न ही रह जाते हैं!

क्या कारण है इसका ?

विश्ववत्सल उपकारी महापुरुषोंने अपने यथार्थ-अनुभव के बल पर जाहिर किया है कि –"अज्ञान और भ्रान्तिवश प्रवृत्तियों का प्रवाह जिस दिशामें बहना चाहिए, ठीक उससे उल्टी दिशामें प्रवृत्तियों के नियामक विचारों की लक्ष्य-गामिता की खामी से बह रहा है।"

"अतएव जगत के तमाम व्यवहारों की पृष्ठ-भूमिका म विकार-वासना क पोषण की गलत मान्यता के बल पर उठनेवाली क्षणजीवी ध्येय-विहीन एवं असंगत कल्पनायें होने के कारण

सज्जन-दुर्जन जाणीये, जब मुख बोले वाणी।
सज्जन मुख अमृत झरे, दुर्जन विषनी खाणी॥

सांसारिक पदार्थों की प्राप्ति या उनका उपभोग सुलभ होने पर भी सचमुच आंतरिक-जीवनशक्तियों के विकासमें से पैदा होनेवाली चित्त की स्वस्थता या शांति का अनुभव जगत के प्राणीयों को न हो-यह स्वाभाविक है। "

इस सनातन-सत्य के संदेश को आज-मात्र के हृदयमें उतारने द्वारा उन्हें वास्तविक सुख-शांति के मार्ग पर चढ़ाने में ही श्रावक-कुल की महत्ता है, चूँकि -इस कुल में जन्म लेने वालों को बचपन से ही जीवन की प्रगति या सुख-शांति के राहमें रोड़े अटकानेवाले विरोधी तत्त्वों की पहचान सुयोग्य ज्ञान की मात्रा एवं जीवन-शुद्धि के विशिष्ट संस्कारों का बुनियादी शिक्षण सदाचार एवं विवेक की प्राप्ति के रूपमें सहज ही प्राप्त होता है।

श्रावक कुल की प्रथम भूमिका में सिखाये जानेवाले श्री-नमस्कार महामंत्र के प्रथम पदमें ही यह बात स्पष्ट रूपसे समझाई गई है।

-धा० सु० १३

श्रावक-कुल दुर्लभ क्यों ?

श्रावक-कुल में पैदा होनेवाले महानुभावों को चाहिए कि'-वे अपने जीवन का महत्त्व सांसारिक दृष्टि कोणसे न समझते हुए अंतरंग शक्तियों के विकास के मानदंड से नापने की कोशिश करें,

---

नर-भव चिंतामणी लही, एले तु मत हार।
धर्म करीने जीवड़ा, ! सफल करो अवतार ॥

चूंकि –व्यावहारिक पदार्थों के द्वारा भौतिक–जगत में सर्वतोमुखी विकास के दृष्टिकोण से जीवन के सार को समझने के रूपमें श्रावक कुल का सर्वश्रेष्ठ महत्त्व कभी भी हस्तगत नहीं हो सकता है

अन्तरंग जीवन–शक्तियों के विकास के कार्य में प्रतिरोध पैदा करनेवाले विवादी तत्त्वों को यथार्थ रूपमें पहचान कर उनसे अपने-आप को बचानेकी यथायोग्य प्रवृत्ति करना यह ही वास्तविक रूपमें **श्रावक–कुल की दुर्लभता** का परिचायक लक्षण है

सारा संसार जीवन को उच्च–स्तर पर ले आनेवास्ते भर–सक प्रयत्न तो कर रहा है, फिर भी जीवन की दिशा का यथार्थ निर्णय विवेक एवं आन्तरिक–विचारशुद्धि के पैमाने से न कर सकने के कारण अनादि के कुसंस्कारों के बल पर उठनेवाले क्षणजीवी विचारों के भरोसे प्रवृत्तियों की भरमारसे आखरी में पल्ले कुछ नहीं पडता है

इस लिए जीवन के मौलिक सर्जन की भूमिका में ही उन चीजों का यथार्थ परिचय होना जरूरी है जिनकी कि विचारणा के सुमधुर प्रकारों से प्रवृत्तियों में सफलता का बीज पैदा होता है, वे चीजें हैं **सम्यक्‌दर्शन, सम्यक्‌ज्ञान और सम्यक्‌चारित्र** इन तीनोंके त्रिवेणी संगम से जीवन को पवित्र बनाने में उपयोगी शुभ संस्कारों का सामर्थ्य श्रावक–कुल में अपने आप सहज ही प्राप्त हो जाता है

दियो उपदेश लागे नहीं, जो नवि चिंते आप।
आप स्वरूप विचारतां, छुटीजे सवि पाप॥

अत एव अठारह देश के मालिक गुर्जर सम्राट् कुमारपाल महाराजा षट्खंड के आधिपत्य से बढ़ कर श्रावक-कुल की स्पृहा हरदम करते थे -श्रा० सु० १४

तप का महत्त्व

किसी भी चीज का महत्त्व उसके विशिष्ट गुणों के द्वारा जीवन की वास्तविक समृद्धि के साधन के रूपमें होता है

अतः पुराने संस्कारों को नष्ट कर के विवेक एवं सद्विचारों की भूमिका पर जीवनशुद्धि के महल को बनाने में अन्य साधना की अपेक्षा तप का स्थान सर्वाधिक महत्त्व-पूर्ण है चूँकि -वासना एवं विकारों की गुलामी में फँसे हुए आतमराम को एवं अनादि वासना-पूर्ण व्यवहारों का निग्रह करने के लिये जिन-शासन की मर्यादावाला तप ही समर्थ है

सामान्य जनता तप का अर्थ सामान्यतः भूखे-मरना ही समझती है, पर वास्तव में उदर को भूखा रखने की अपेक्षा मनको भूखा रखने का प्रधान आशय समझानेवाला तप का मार्मिक अर्थ समझना जरूरी है

इसलिये 'पू. उपा. श्री यशोविजयजी म. क्या फरमाते हैं?

' इच्छा रोध संवरी, परिणति समता योगेरे

तप ने एहिज आतमा, वर्त्ते निजगुण भोगेरे "

अर्थात्-बाहर उठनेवाली नाना प्रकार की इच्छा-कामना एवं वासनाओं का समभाव विवेक पूर्वक समपरिणाम की परिणति के बल से

जेणि रस पाप कर्या तुमे, तेणि रस कर तू धर्म ।

निवे तो भव-भव तणा, छूटीने सवि कर्म ॥

रोक कर आन्तरिक जीवन-शक्तियों के विकास के विशुद्ध लक्ष्य से की जानेवाली तपस्या यथार्थ में आत्म-कल्याण की सफल साधना में उपयोगी होती है

इस प्रकार तपस्या का मार्मिक अर्थ विवेक-बुद्धि से समझ कर जीवन-शुद्धि के महत्त्व-पूर्ण कार्य को सफल बनाना विवेकी का पवित्र कर्त्तव्य है

—आ० सु० १५

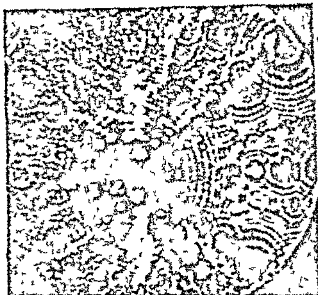
अणुमें विराट

शास्त्रों में सुदीर्घ अनुभव एवं सम्पूर्ण ज्ञान के बल पर जगत के जड़-चेतन दोनों स्वरूपोंका प्रतिपादन किया है, और अनादिकालीन अनात्म-पदार्थों के प्रति रहे हुए आकर्षण को कम करने वाले जड़ पदार्थ भी कितने शक्तिशाली हैं? चेतन की अविकसित शक्तियों को किस प्रकार दबाती है? आदिका वर्णन सूक्ष्म रीति से किया है

परन्तु आन्तरिक जिज्ञासा के बिना उन्हें श्रद्धेय रूपमें मानने की भी तैयारी जिनकी नहीं होती है, उन को आजका भौतिक युग भी अपने वैज्ञानिक अन्वेषणाओंके फल स्वरूप नये नये अजब आविष्कारों द्वारा किस प्रकार शास्त्रों में वर्णित सूक्ष्मतम श्रद्धागम्य पदार्थों को भी हृदयङ्गम करा रहा है? यह समझने वास्ते थोडे से समय पहले अखबार में आये हुए वैज्ञानिक समाचार यहाँ उध्धृत किये जाते हैं

धन-कारण तू हलफले, विम धर्ममांहि या शूर।
अनंत भवना पाप सवि, क्षिणमां जाये दूर॥

एटम–अणुका स्वरूप–दर्शन



"गुलाब म २०१२ दीपावली अङ्कमें से साभार उद्धृत
देखिये [illegible] यह एक [illegible] के [illegible] नामके [illegible]
[illegible] आज तक दस [illegible] अणुओं का प्रत्य[illegible]
[illegible] सर्वोत्तम माइक्रोस्कोप द्वारा २७०००० गुना
बड़ा कर [illegible] चित्रमें बताये गये हैं

यह चित्र अमेरिका की पेन्सिल्वेनिया यूनिवर्सिटी के पदार्थ विज्ञान के प्राध्यापक डॉ. मूलरने लगातार १९ वर्ष संशोधन एवं परिश्रम [illegible] कर फील्ड आयोन माइक्रोस्कोप

रोक कर आन्तरिक जीवन-शक्तियों के विकास
जानेवाली तपस्या यथार्थ में आत्म-कल्याण
उपयोगी होती है

इस प्रकार तपस्या का मार्मिक अर्थ विवेक
जीवन-शुद्धि के महत्त्व-पूर्ण कार्य को सफल बनाना
कर्त्तव्य है

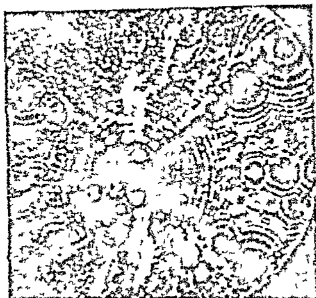
—मं।

अणुमें विराट

शास्त्रों में सुदीर्घ अनुभव एवं संपूर्ण ज्ञान के बल पर जड़-चेतन दोनों स्वरूपोंका प्रतिपादन किया है, और अना अयाम-पदार्थों के प्रति रहे हुए आकर्षण को कम करने वाले पदार्थ भी कितने शक्तिशाली हैं, चेतन की अविकसित शक्तियां किस प्रकार दबाती हैं, आदिका वर्णन सूक्ष्म रीति से किया है परंतु आन्तरिक जिज्ञासा के बिना उन्हें श्रद्धेय रूपमें मानने की भी तैयारी जिनकी नहीं होती है, उन को आजका भौतिक युग भी अपने वैज्ञानिक अन्वेषणाओंके फल स्वरूप नयेर अजब आविष्कारों द्वारा किस प्रकार शास्त्रों में वर्णित सूक्ष्मतम श्रद्धागम्य पदार्थों को भी हृदयङ्गम करा रहा है, यह समझाने वास्ते थोड़े से समय पहले अखबार में आये हुए वैज्ञानिक समाचार यहां उध्दृत किये जाते हैं

घन-कारण तू हलफलें, विम घर्मनाहि या शूर।
अनंत मबना पाप मवि, खिणमा जाये दूर॥

एटम-अणु का रूप-दर्शन



'सुन्दर' में २०१२ दीपोत्सवी अंक में से साभार उद्धृत

इसमें ... एक इंच के दस करोड़वें हिस्से जितना सूक्ष्म निर्मल, और जिसे दूरबीन भी न देख सके ऐसे 'अणु' को प्रबल शक्तिशाली सर्वोत्तम माइक्रोस्कोप द्वारा २७५०००० गुना बड़ा करके इस चित्र में बताया गया है

यह चित्र अमेरिका की पेन्सिलवेनिया युनिवर्सिटी के पदार्थ विज्ञान के प्राध्यापक डॉ. मूलर ने लगातार १९ वर्ष संशोधन एवं परिश्रम करके फील्ड आयोन माइक्रोस्कोप

नामक मशीन द्वारा लिया है काँच के एक थरमोस में दूसरा थरमोस रख दे वैसी आकृति इस मशीन की है

अणुओं का चित्र लेने वास्ते सुई की सूक्ष्मतम नोक से भी हजार गुनी सूक्ष्म **टंगस्टन** के तार की नोक पर रहे हुए अणुओं के सामने **माइक्रॉस्कॉप** लगाया गया, बाद में उनका उष्णतामान प्रवाही **नाइट्रोजन से** शून्य करते हुए ३०० अंश नीचे उतारा गया आवश्यक **आयोन** बनाने के लिए **हेलियम** वायु का उपयोग किया गया

फलतः अणु-आच्छादित **टंगस्टन** की नोक ने **फ्लुओरेसन्ट** पर्दे पर एक बड़ा चित्र बताया, विशिष्ट बनावट के **केमेरे** ने उसका **फोटू** खींच लिया

इस प्रकार सुई की नोक से हजारगुनी बारीक टंगस्टन तार की नोक पर रहे हुए सूक्ष्मातिसूक्ष्म अणु (जो कि एक इंच के दशलाखवें हिस्से के हैं) **ओं को २७॥ लाख गुना बढ़ा कर के केमेरा द्वारा स्थूल-दृष्टिगोचर बनाये गये**

चित्र में देखने से पता चलता है कि तीन हजार की संख्या में अणुओं का समूह सूक्ष्मातिसूक्ष्म रूप में समाविष्ट है

सचमुच इस प्रकार अणु में विराट् के दर्शन कर के शास्त्र में बताए हुए–'**एक सुई की नोक पर निगोद के अनन्त जीव**' या '**आँख की पलक के एक तल पर असंख्य निगोद गोले**' आदि २ अनेक

आशा अमर जोगी, मनु पगलां हेठ।
धर्म बिना जेना दिन गया, तेनी माणो वेठ॥

श्रद्धा-गम्य बातों का पूरी र विश्वसनीयता आत्मा क आनन्द की प्रतीति क बल पर हर कोई सुन प्राणी कर सकता है

—मा० कृ० ९

जरा सोचिये तो ! ! !

० बर्तन, कपड़े एव शरीर पर लगे हुए मैल को हटाने का प्रयत्न तो सदा चलता है, परन्तु पुरानी वासनाओं के मैल को धोने वास्ते कभी सोचा है क्या ?

० दूसरों की बुरी आदतों का विवेचन करने के दरवाजे से ही अपने मे कइ प्रकार की गलतियों को छिपाने की दुर्वृत्ति घुस जाती है।

० किसी भी अज्ञात–अपरिचित दुखी क दुःख को हटाने क सत्प्रयत्न की गरज से उपस्थित तमाम सामग्री लुटा दिजिये !

देखिये ! त कितना मजा आता है उस निःस्वार्थ-सेवामें ! ! !　　　—मा० छ० २

अफसोस है कि ! ! !

० चांटी की चालसे आनेवाले और हाथी की चालसे शीघ्र जानेवाले पुण्य के वैभव को सुख-शांति और अमन-चमन के नाम पर लूटा देने मे ससार मशगुल है.

० बे-खबरी हालत में मूर्खता या आवेश क चक्कर में

रे जीव ! सुण तु बापडा ! तु म करीश गर्व लगार।
ससार–स्वरूप देखी करी, निज-हैये भल्ल विचार ॥

फस कर किये हुए पुराने कर्मों के कर्ज से मुक्त करानेवाले दुःखों को सौम्य भाव से न झेलते हुए हाय-हाय कर के नया कर्जा सिर पर चढ़ाती है यह दुनिया ! ! !

० पाप वृत्तियें फल्गुभावने वाग-स्वरूप के चक्कर में फँस कर सनातन-शुद्ध ज्ञानानंद खुद को विषम कर्मों के बंधन में फँसा देने की अक्षम्य गलती अज्ञानी आत्मा बार-बार दोहराता रहता है —मा० कु० ३

卐 ज्ञान कितना ? और कैसा ?

जीवन-शुद्धि के वास्ते अत्यंत जरूरी ज्ञान उतना ही अपेक्षित है, जितना कि वृत्तियों के संशोधन में उपयोगी हो, एवं च सदाचार के पथ पर विशेष रूपमें प्रेरक हो, अन्यथा योग्य धन-संपत्ति के अभाव में गिरोहर के रूपमें (मोरगेज किया हुआ) दूसरे के कब्जेमें रहे हुए खुद ही के वैभव की ज्यों समय पर अपने आप को कुसंस्कारों के फंदेसे न छुडा सकनेवाले विपुल भी शास्त्र-ज्ञान तोता-पाठ की ज्यों या चंदन का बोजा ढोनेवाले गदहे की ज्यों अर्थशून्य रह जाता है

अतः आचरण द्वारा जिस की सफलता यथाशक्य रूपसे हो सके वह ही ज्ञान मुमुक्षुओं को उपादेय है.

—मा० कु० ४

जीवन है अजब पहेली, क्या भेद समझ में आये ? ।
ज्यों ज्यों इस को खोलो, त्यों त्यों यह उलझी जाये ॥

卐 मननात्र प्र[illegible]

व्यवहारमें कहा जाता है कि-'[illegible] हैं' 'एक पहिये से गाड़ी नहीं चलती हैं' [illegible] है कि हर कार्यमें बाह्य (निमित्त) कारण [illegible] कारण दोनों परस्पर सापेक्ष रूपमें उपेक्षित रहते हैं

अत हर कर्म के उदयादि प्रसंग में [illegible] क्षेत्र, काल, भाव और भव बाह्य निमित्त रूपमें तदनुसार अशुभ कर्मों का उदय [illegible]। [illegible] अशुभ द्रव्यादिका सहयोग उपस्थित हो,

यदि शुभ द्रव्यादि का उपस्थिति हो तो उदयमें [illegible] अशुभ कर्म भी शुभ रूपमें पलट सकते हैं

यदि शुभ द्रव्यादि की उपस्थिति में भी अशुभ कर्म [illegible] उपसगादि अशुभ रूपमें उदय में आवे तो समझना चाहिए कि यह कर्म सत्ता रूपमें ही क्षीण होने को आया है।

इस प्रकार की विचारणा शुभाशुभ कर्मों के उदयमें समता का सहजसिद्ध उपाय मानी जाती है

—मा० क० [illegible]

आशा का उड़न-खटोला, ऊँचा ही उड़ता [illegible]
क्या मृग-तृष्णा में पड़ कर, यह जीवन सुखी [illegible]

卐 मोक्ष की इच्छा

विषय-विकारों की इच्छा सहज में-चाहे कितना ही शास्त्रों का शाब्दिक ज्ञान का बोझा मगज पर लादा जाय फिर भी-आंतरिक वृत्तियों का मोह जल्द बिना निर्मूल नहीं हो सकता है

इच्छाओं का वास्तविक उन्मूलन तो लोह को लोह से काटने की भांति अशुभ इच्छाओं का दमन कर देनेवाली आत्मशक्तियों के यथार्थ विकास रूप मुक्ति की प्रबल इच्छा के आविर्भाव से ही हो सकता है

"Will is power" अनुभवीओं का यह अनुभवसिद्ध वाक्य आंतर शक्तियों के विकास की नींव पर उठनेवाली प्रशस्त इच्छा कई जन्मों की विमार्गगामिनी प्रबल कामनाओं पर सरलता पूर्वक विजयिनी हो कर जीवन को ऊर्ध्व गामी बना देता है

-- भा० क्र० ६

卐 मुक्ति की इच्छा क्यों?

इच्छा, कामना एवं अभिलाषाओं का उठना विचारों के छिछलेपन को बतलाता है, अत एव शास्त्रों में जगह २ पर इच्छाओं का निग्रह साधकों के लिए अत्यंत आवश्यक माना गया है

साथ ही मोक्ष एवं उसके साधन रूप धर्म और उसके प्रकारों को जीवन में स्पृहणीय ही नहीं प्रयुत उत्कट इच्छा-अभिलाषा के योग्य माने गये हैं

दुःख-सुख की आँखमिचौनी-का है संसार बनाया।
आशा-तृष्णा के वश फिर भी, जगमें सब कोई भरमाया॥

卐 मोक्ष की इच्छा

विषय-विकारों की इच्छा सहज में—चाहे कितना ही शास्त्रों का शाब्दिक ज्ञान का बोझा मगज पर लादा जाय फिर भी—आन्तरिक वृत्तियों का मोड़ बदले बिना निर्मूल नहीं हो सकता है

इच्छाओं का वास्तविक उन्मूलन तो लोहे को लोहे से काटने की तरह अशुभ इच्छाओं का खत्म कर देने वाली आत्मशक्तियों के यथा-विकास रूप मुक्ति की प्रबल इच्छा के आविर्भाव से ही हो सकता है

"Will is power" अनुभवीओं का यह अनुभवसंवाक्य आंतर शक्तियों के विश्वास की नींव पर उठने वाली प्रशस्त इच्छा कई जन्मों की विरुद्धगामिनी प्रबल कामनाओं पर सरलता पूर्वक विजयिनी हो कर जीवन को ऊर्ध्वगामी बना देता है

—मा० कृ० ६

卐 मुक्ति की इच्छा क्या?

इच्छा, कामना एवं अभिलाषाओं का उठना विचारों के उत्थापन को बतलाता है, अत एव शास्त्रों में जगह २ पर इच्छाओं का निग्रह साधकों के लिए अत्यंत आवश्यक माना गया है

साथ ही मोक्ष एवं उसके साधन रूप धर्म और उसके प्रकारों को जीवन में स्पृहणीय ही नहीं प्रत्युत उत्कट इच्छा-अभिलाषा के योग्य माने गये हैं

दुःख-सुख की आँखमिचौनी-का है संसार बनाया।
आशा-तृष्णा के वश फिर भी, जगमें सब कोई भरमाया॥

विपुल सुविधाएँ मिलने पर भी मानसिक शांति का अनुभव नहीं होता है, प्रत्युत जो नहीं मिला है उसका परिताप ही धधकता रहता है

अतः दृष्टि का माध्यम ज्ञानियों के अनुभवपूर्ण वचनों के आधार पर नियत करना सर्वप्रथम अपेक्षित है

समझदारी और सतर्कता से सोचने पर प्रतीत होता है कि — 'दृष्टि जैसी सृष्टि' कहावत के आधार पर असंतोष की आग को बुझानेवाली भौतिक दृष्टि के रहते कभी भी उपस्थित संयोग–सामग्री एवं परिस्थितियाँ दम पकड़ा नहीं जा सकता है

अतः **विवेक–दृष्टि** को अपनाकर **जिस समय जो भी** अच्छी या बुरी, थोड़ी या ज्यादह, अनुकूल या प्रतिकूल **संयोग–सामग्री मिल जाय उसे सहर्ष स्वीकृत कर जीवनमें शांति–संतोष को आने का रास्ता खोल देना बुद्धिमानों का कर्तव्य है.**

- मा० कृ० ८

卐 संसार का सुख कैसा ?

वास्तविक दृष्टिसे देखा जाय तब स्पष्ट रूपमें यह प्रतीत हो कर के रहता है कि — जगत का दीखनेवाला सुख शहद लिपटी हुई तलवार की धार चाटने बराबर क्षणिक और भयंकर दुःख भरपूर होता है।

उंचे बेठे शु थयुं? जो गुण आव्यो न होय।
बेठये देवल शिखर, वायस गरुड न होय ॥

अज्ञानवश मोहमूढ़ प्राणी अपनी निजी आत्मिक शक्तियों का सच्चा संवेदन न होने के कारण इन कल्पनाजन्य सांसारिक सुखों के पीछे लालायित हो पागल-सा बनता है, परन्तु निर्मल बुद्धि का प्रकाश मिलने पर यह बात भली भांति समझी जाती है कि सकर लिपट कर गये हुए गोबर के लड्डुओं को खाने में जो अनुभव होता है वह ही संसार के दीखनेवाले सुखों में होता है।

अतः समझदारी के साथ सुखके बारे में गफलत न करते हुए यथार्थ मार्ग लेना उचित है।

–भा० दृ० ९

सुख या दुःख ?

व्यावहारिक सुख–जो कि अर्थ–काम के द्वारा पैदा होता है, हमेशा दुःख-मिश्रित अपकारजनित एवं दुःखों की अन्तर्गत परंपरावाला होने से वस्तुतः दुःख ही माना जाय, फिर भी साँप–काटे मनुष्य को जहर के प्रभाव से नीम के कड़वे पत्ते भी मीठे मालूम होते हैं, इस प्रकार अज्ञान–मोह के कारण जगत का दिखनेवाला सुख दुःख रूप होने पर भी स्पृहणीय मालूम पड़ता है।

कई बार ऐसा अनुभव होता है कि कड़वे खाने के बाद जैसे जल का मीठा रस विशेष स्पष्ट प्रतीत होता है, उस तरह थोड़े-बहुत दुःख की उपस्थिति के बाद ही जगत के सुन्दर–मनोहर भी पदार्थ मधुर

ज्ञान विनानो मुनि दुःखी, विण गृहस्थी धन–हीन
छते साधने आलसु, जरूर होवे दीन

पर आकर्षक लगते हैं, अन्यथा चाहे कितने भी सुंदर पदार्थ उदासीन-भाव में विलीन हो जाते हैं

पर च कितने भी सुंदर या उत्तम पदार्थ भोग के पश्चात् कुछ न कुछ निराशा के बहाने के नीचे दुःख रूप थूहर के बीज को मानस में बोट जाते हैं, जो कि बीज बिना किसी प्रयत्न के भी अपने-आप बढ़ते हुए जीवन को दुःख के कंटकों से भर देते हैं.

इसका मतलब यह हुआ कि सामाजिक तथा-कथित सुख के आगे और पीछे स्पष्ट या अस्पष्ट अंदाज या बहुत मात्रा में दुःख की उपस्थिति अनिवार्य है

ऐसी स्थिति में जगत के उत्तमोत्तम पदार्थों के उपयोग से भी पैदा होनेवाला सुख यथार्थ में दुःख ही है.

अत एव संसार का दिखनेवाला सुख-वास्तव में "सुख है? या दुःख?" इस प्रश्न के गहरे विचार का ही जीवन में चिरस्थायी शांति का हाथ पकड कर स्थापित करने का श्रेय विवेकी महापुरुषों को दिया है

-म० दृ० १०

पर्वाधिराज का स्वागत

आज वह पवित्र दिन है कि -जिस दिनसे जीवन शुद्धि के महान् पर्व का प्रारंभ होता है

पहुंच्या नरने पूछीए, पहुंच्यानी वात ज एक।
अध-रुंधे नर जे रह्या, तेहनी वात अनेक॥

इसी भाँति तमाम धर्म-क्रियाओं का मुख्य [illegible] विषयों का निग्रह एवं कषायों का शमन माना जाता है। जब तक विकारों में कमी और विकारों का नाश न हो, तब तक धर्म-क्रिया जड़ क्रिया है [illegible]

जैन दर्शन में देव, गुरु और धर्म के [illegible] उपासना में राग, द्वेष-मोह आदि के अनुत्तम संस्कारों के निग्रह का मुख्य माना है, परन्तु ज्ञानीयोंने तमाम धर्म क्रियाओं की सफलता का मापक-यन्त्र कषायों का उपशमन बताया है।

इन आठ [illegible] महान पर्व का प्रारम्भ हो रहा है, उसका [illegible] आराधन के लिए अनादिकालीन अशुभ संस्कार एवं असत्प्रवृत्तियों के बल को कम करते रहने के सुदृढ़-संकल्प के साथ विविध धर्म-क्रियाओं का आसेवन अज्ञान एवं अविवेक से उठनेवाली कषायों की भावनाओं का निग्रह हो [illegible] सफल उपयोग होना परमावश्यक है।

इन दिनों में पुराने कषायों को [illegible] के साथ नये कषाय पैदा न हों इस का भी पूरा विवेक रखना जरूरी है।

साथ ही अमारि-पालन (दया प्रवर्तन से जीवहिंसा रुकवाना) अट्ठम का तप (तीन उपवास) परस्पर-क्षमापन, सांवत्सरिक-प्रतिक्रमण, श्रीकल्पसूत्र जैसे महा मांगलिक-पवित्र आगम का

जब तक सांसा तब तक आशा, कुटिल जगत का यही तमाशा।
क्षण में आशा दूर निराशा, जब कि उड़ गया है सांसा॥

अभरशः श्रवण, आदर्श साधर्मिक-भक्ति, गुणानुराग, चैत्य-परिपाटी (अपने गाँवमें रहे हुए समस्त जिनालयों की यात्रा), किये हुए पापों की यथार्थ आलोचना, एवं प्रायश्चित्त आदि कर्तव्यों का पालन कर के जीवन-शुद्धिकारक पर्वाधिराज का सच्चा स्वागत करना चाहिए (श्रीपर्युषणापर्व प्रारंभ दिन)

भा० कृ० ११

करामाती पत्र

(जीव ने मृत्यु के समय पर शरीर को लिखा हुआ हृदयद्रावी पत्र)

इस संसार में मित्रता के संबंध को निभानेवाले कई व्यक्ति अपने स्वार्थ की मात्रा को भी छोड़ कर सच्चे दिल से परस्पर सुख-दुःख की संवेदना में संपूर्ण भाग लेते हैं, जब कि कुछ स्वार्थ-साधना में तत्पर एवं मानवता के संबंध की भी दरकार न रखनेवाले पशुवृत्ति-प्रधान प्राणी अपनी मर्जी-इच्छाओं की पूर्ति होने तक मित्रता बनाये रखते हैं, और स्वार्थ-पूर्ति होने की उम्मीद न रहने पर या स्वार्थ-पोषण के बदले में आनेवाली आफतों के मौके पर झटसे किनारे हो जाते हैं या सात-पाँच गिन कर छू हो जाते हैं

इस चीज को समझने वास्ते नीचे का "करामाती पत्र" गंभीरता एवं समझदारी के साथ पढ़ने की आवश्यकता है

आता है जब काल का झोंका, प्राण-तैल तब देता धोखा।
सकता नहीं किसी का रोका, बार बार मिले न मौका॥

जीवराजभाई मौत का समय नजदीक आते ही दिल की बातें अपने सहचारी शरीर को मार्मिक-रूप में उलाहना और कदरदानी व्यक्त करने के रूप कहता है कि —

"प्यारे मित्र!

आज दिन तक के तेरे परिचय से मुझे बहुत ही नुकसान हुआ है, इतना ही नहीं किन्तु अत्यंत लाभदायक और मोक्ष के साधन सद्गुणों का नाश हुआ है, और नरक के ले जाने वाले दुर्गुणों की प्राप्ति हुई है. तूने वास्तव में सच्ची मित्रता रखी नहीं है, परन्तु उलटा दुश्मन का ही काम किया है. इस स्वार्थमय दुनिया में सदा स्वार्थ-साधक और मतलबी मित्र बहुत होंगे, परंतु सन्मार्ग-त्यागी तेरे जैसा मित्र कोई ही होगा, मैं मानता हूँ कि मेरी तृष्णा-वृत्ति एवं कामनाओं की पूर्ति के वास्ते ही तेरी मेरे पर प्रीति है, इतना ही नहीं, सच्चे अंत करण की नहीं है, स्वार्थ-साधन के सिवाय आत्मवाली मात्र दिखावटी है, तेरे जैसे मित्रों के साथ कायमी मित्रता की इच्छा नहीं है, मैं इस अंतिम पलमें ही साथ त्याग करने की इच्छा है, तेरे जैसे संकट के समय पूर्ण रूपसे सहायता

तन छकी फिकर मया, धर्यो रैन-दिन ध्यान।
कबहू मिट न कामना, बिना विचारे ज्ञान॥

न देनेवाले किन्तु उल्टा धैर्य तोड कर अयधिक दुःख देनेवाले मित्र इस दुनिया में क्वचित ही होंगे, तेरे इन दुर्गुणों के कारण तूँ हजार बार धिक्कार का पात्र है, तथा तेरे दुष्ट कर्तव्यों के फल-स्वरूप कर्मराजा तेरे को सदा के लिए बंधन में डालेगा, तूँ कभी भी यह मत समझ कि बंधनों से मुक्त कर देगा. तथास्तु "

तुम्हारा यथार्थ प्रेमी
जीवराज का यथावत्

खास विचार पूर्वक शांतिसे पढ़िये ! ! !

इस पत्र के द्वारा चेतनन अपनी काया के प्रति दुःख के उद्गार निकाले हो, ऐसा पत्र को पढ़ते ही मालूम होता है, परन्तु समझदारी एवं विवेक-बुद्धि से चेतनने काया के द्वारा किये हुए धर्म-कार्यों की अनुमोदना के रूपमे काया को धन्यवाद भी इस ही पत्रमे दिया है, यह कैसे ? इस को समझने वास्ते इस पत्र की सम-संख्याक (२-४-६-८-१० आदि) पंक्तियें छोड़ते हुए पढ़ते जाइए ! ! ! आप को इस पत्र की करामात मालूम हो जायगी.

—भा० क्र० १२ (१३ का क्षय)

सुत दारा और लक्ष्मी, पापी के भी घर होय ।
सत-समागम प्रभु-भजन, ए दो दुर्लभ होय ॥

जगत के तारणहार की पहचान

विश्व में कई प्रकार के प्राणी होते हैं, जिनमें के कुछ वासनाओं की तृप्ति का ही ध्येय रखकर दिन-रात परेशान रहते है, कुछ प्राणी मानवता के नियमों को कुछ समझकर जीवनमें पशु-वृत्ति का रोकने की चेष्टा करते हैं, कितनेक आदर्श महापुरुष अपनी तमाम प्रवृत्तियों पर विवेक और सम्यक्-ज्ञान का प्रकाश फैला कर अपनी वृत्तियों को संपूर्ण रूपसे स्व और पर के हित की साधना करने में लगा देते हैं,

परन्तु जगत के अनंत प्राणीयों के सच्चे उद्धारक श्रीतीर्थंकर-भगवंत अपनी कल्याण-साधना निपट भी जाने पर भी जिस करुणा-भाव को लेकर सारे संसार के छोटे-बड़े तमाम प्राणीयों के कल्याणार्थ जो महापरिश्रम उठाते हैं, उस की सच्ची जानकारी के वास्ते तीर्थंकर-देवों की उदात्त करुणा-भावना को समझना आवश्यक है

इस के लिए पूज्य उपाध्याय श्री यशोविजयजी महाराज फरमाते हैं कि —

"महागोप महामाहण कहीए,
निर्यामक सत्थवाह ।
उपमा एहवी जेहने छाजे,
ते जिन नमीए उच्छाह ॥"

इस दुहे में तीर्थंकर भगवंतों को सारे संसार के लिए महा-

सप करे किमत बने, घटे करे मन रीस ।
याय अरु मुग्ग फेरवे, त्रेसठ ना छत्रीस ॥

गोप, महामाहण, महानिर्यामक और **महासार्थवाह** के तुल्य बता कर उन की लोकोत्तर–उपकारिता का परिचय दिया है

इन में की पहली उपमा का यहाँ विचार प्रस्तुत है —जैसे ग्वाला अपने गाय–भैंस आदि पशुओं का पालन करता है अच्छा घास और मीठे पानीवाले जंगलों में चराने को ले जाता है, एवं बाघ, शेर आदि हिंसक जानवरों से बचाता है, इस तरह संसार के एकेन्द्रिय से लगा कर पंचेन्द्रिय तक के तमाम जीवों की आरंभ–समारंभादि द्वारा होनेवाली विविध हिंसाओं से भव्यात्माओं को बचा कर नये कर्म के बंधनों से बचाते हैं और आत्मा के सच्चे विकास के अनुकूल साधनों का जुटाव कर देते हैं, तथा अज्ञान–अविवेक द्वारा होनेवाले विषम कर्मों के हिंसक आक्रमण से बचाते हैं, इस तरह संसार रूप उजाड जंगल से पार उतार कर मोक्ष रूप हरे–भरे जंगल में भव्यात्मा रूप पशुओं को ले जाते हैं

इस लिए श्री **तीर्थंकर देवों** को **"महागोप"** कहे जाते हैं

इस प्रकार संसार के तमाम प्राणियों को सच्चे मार्ग पर चढाने वाले **तीर्थंकर परमात्मा** के अद्भुत–लोकोत्तर व्यक्तित्व को समझ कर उनके प्रति अपने कर्त्तव्य की जवाबदारी अदा करने वास्ते प्रयत्नशील होना प्रत्येक विवेकी का पवित्र कर्त्तव्य है

—भा० क्र० १४

स्त्री पीयर नर सासरे संजमिया सहवास।
पग पग होये अलखामणा, जो मांडे थिरवास॥



(देखो पृ ५९)



(देखो पृ ६९)

विवेक की प्रतिष्ठा

जिस प्रकार दुर्बल शरीर में कई तरह की बीमारियाँ जरा-सा निमित्त पा कर उठती रहती है उस तरह अपनी आंतरिक शक्तियों के विकास के अभाव में क्षुद्रता, तुच्छबुद्धि एवं विवेक-शून्यता के कारण बाह्य जगत के साहजिक नानाविध परिवर्तनों के प्रसंग में व्यावहारिक रूपसे निमित्त रूप होनेवाली व्यक्तियों को अपना दुश्मन मानकर उनसे बदला लेने की वृत्ति हो कर अनर्थों की परंपरा में अपने-आप ही अज्ञानी जीव फँस जाता है

अपनी इस अक्षम्य गलती को सुधारे बिना व्यावहारिक मनुष्यों को परास्त करते रहने की खटपट में पड़ना सचमुच भयंकर अज्ञान है

इस अज्ञान के पर्दे को हटा कर जीवन में आचार-शुद्धि, एवं अन्तर्निरीक्षण-वृत्ति के द्वारा विवेक की प्रतिष्ठा करना मुमुक्षुओं का उदात्त कर्तव्य है

—भा० कृ० ०))

समझदारी का नमूना

आश्चर्य की बात है कि सारा ही संसार प्रशंसा सुनने को तैयार है, पर निंदा सुनने को नहीं, वस्तुत. प्रशंसा सुनने का उसे ही अधिकार है जो कि अपनी निंदा खुले दिल से सुनने को तैयार हो ! जैसे कि दुकान में भागीदारी रखने के बाद उस में से

जूँठ समु कोई पाप नहीं, लोभ पापनो बाप।
सत्य समो कोई धर्म नहीं, निंदा मोटु पाप॥

मुनाफा लेने का उसे ही पूरा अधिकार है जो कि नुकसानी में भी हर तरसे तैयार हो!!

अतः अपने दोषों का संशोधन करनेवाली निंदा को भी अपनाना जरूरी है

—भा० सु० १

शांति-आनंद पाने की कुंची

यदि किसी मनुष्य को किसी विषय में लाभ अधिक हो और उस की आशा (तृष्णा) कम हो तो उसे आनन्द—की मात्रा कम होती जायगी

शांति-आनंद को पाने का सीधा तरीका है आशा कम करना या लाभ बढाना, और लाभ अपना बढाया नहीं बढता है—*वह तो बढेगा आशा की मात्रा बहुत कम होने पर आत्म शक्तियों* के मौलिक विकास से अपने-आप ही।

अतः आशा-तृष्णाओं को कम कर के शांति—आनंद सरलता पूर्वक पानेका प्रयत्न करना उचित है

—भा० सु० २

लोकोत्तर महापुरुषों की पहचान

इस अवसर्पिणी-युग के आद्य चक्रवर्ती और **श्री ऋषभदेव** भगवत के आद्य पुत्र **श्री भरत महाराज** ने अपनी विवेक-बुद्धि

घनवंत कु कांटा लगे, खमा करे सहु कोय।
निरधन डूंगर से पड़े, वो बात न पूछे कोय॥

को जागृत रखने के लिए व्यवस्थित रूपसे तैयार किये हुए आर्य महाश्रावक जिस तरह "जितो भवान्! वर्द्धते भीस्तस्मान्मा हन!! मा हन!!!" शब्दों से भरत-महाराजा को हितकर उद्बोधन करते थे, एवं च जहाँ-तहाँ होनेवाली हिंसा को "मा हण मा हण" शब्दों से रोकने की चेष्टा करते थे-(ये ही लोग आगे चल कर माहण (ब्राह्मण) संस्था के उपादक हुए)

इस तरह लोकोत्तर-उपकारी **श्री तीर्थंकर-परमात्मा** भव्यात्माओं का उद्देश्य कर के निरंतर घोषणा-पूर्वक कह रहे हैं कि —

(अ) **"मा हण! मा हण! "किसी जीव की हिंसा मत करो!!!"**

(आ) **"शक्य जयणा** (बचाव की तत्परता) **और विवेक बुद्धि के समन्वय से अनर्थ दंड** (निष्प्रयोजन हिंसा) **का सर्वथा त्याग कर के अर्थदंड** (मजबूरी से की जानेवाली हिंसा के) **क्षेत्र में भी संकोच करते रहो!!!"**

इस महापवित्र संदेश को संसार के तमाम प्राणीयों को सुना कर श्री तीर्थंकर भगवंत स्वयं की **लोकोत्तर महापुरुषोचित** भाव-करुणा का परिचय दे कर अपनी **महा-माहण** उपमा को सार्थक करते हैं

इस प्रकार तीर्थंकरों की लोकोत्तरता पहचान कर उनके विशिष्ट व्यक्तित्व को सद्गुणों के विकास के द्वारा अपने जीवन में उतारने का सत्प्रयत्न करना जरूरी है — **मा० सु० ३**

तप विण नवि थाये, नाश दुष्कर्म को।
तप विण वि टले, जन्म-मरणनो फेरो॥

क्षमापना का महत्त्व

आज पर्वाधिराज **श्री संवत्सरी**–महापर्व का पवित्र दिन है.

पर्युषणा-पर्व के सात दिन की आराधना आजकी आराधना को सफल करने के लिए ही है

अज्ञान एवं मोह–माया के विषम- संस्कारों की जाल में फँस–कर तुच्छ क्षणिक पदार्थों के निमित्त से उठनेवाले **विषय–विकार एवं कषायों के मल को**–शुद्ध -परिणाम और सच्ची समझदारी के साथ **गल्तीयों के सच्चे दिल्के इकरार के बलसे–दूर करने की सफल चेष्टा आज की आराधना का रहस्य है**

सांवत्सरिक–प्रतिक्रमणका भी मतलब यह ही होता है कि—

"जीवन का पापों के मार्ग से पीछा हटा कर पुनः उस मार्ग पर जीवन चला न जाय ऐसी विचार एवं आचारों की शुद्धि बनाये रखने का प्रयत्न करना"

फलतः आज का प्रतिक्रमण करके चाहे कैसे भी भयंकर रूपमें अपना व्यावहारिक नुकशान करनेवाले कट्टर दुश्मन के प्रति भी सच्चे दिल से मैत्री–भाव के रूपमें यथार्थ **क्षमापना का महत्त्व समझ** में आता है

इस प्रकार आदर्श–क्षमापना को अपना कर आजकी आराधना सफल बनानी चाहिए

संवत्सरी महापर्व दिन
— भा० सु० ४

काया कू बाध्या मिले, छूटे कौन उपाय।
कर सेवा निर्ग्रंथ की, पलमें दीये छुडाय॥

पर्वाधिराज की स्मृति

आज का दिन गत पर्युषण-पर्व की आराधना का स्मृति-दिन माना जाना है

जैन-शासन की प्राप्ति एवं आराधना के मुख्य फल रूप आतरिक विचार-परिणति को निर्मलता बनाने और उसे टिकाने के लिए आराधक आत्मा को हमेशा अपनी आराधना एवं उसके पीछे रही हुई मनोवृत्ति को टटोलते रहना चाहिए कि –"आराधना करने के पूर्व मेरी अवृत्तिए कैसी थी? किस प्रकार इन वृत्तियों में शक्य परिवर्तन हो सके?'

आज की दुवली-आठम अपने को यह ही सूचित करती है कि –पर्युषण-महापर्व की आराधना द्वारा रागादि-विकारों में कितनी क्षीणता हुई? शरीर की दुर्बलता की अपेक्षा वृत्तियें एवं अपनी शक्तियों के दुरुपयोग की मात्रा दुर्बल होना जरूरी है

इस आशय से आज की आराधना द्वारा पर्युषण में की हुई आराधना का हिसाब लगाना प्रत्येक विवेकी का कर्त्तव्य है

—भा० सु० ८

रथ-यात्रा का महत्त्व

धर्म की आराधना का वास्तविक फल अपना कल्याण-साधना के

परतणी निंदा जे करे, कूडा दवे आल।
मर्म प्रकाशे परतणा, तेथी भलो चडाल॥

उपरांत जगत के अन्य प्राणियों को भी मोक्ष राह पर ले जाने में है, तमाम धर्म-क्रियाओं में यह आशय मुख्य होता है

अतः धर्म की प्रभावना के उद्देश्य से निकाले जाने वाले **रथयात्रा** के पवित्र कार्य में विशिष्ट-रूपमें आन्तरिक भावनाओं का नूतन बल का होना जरूरी है

वास्तव में **रथयात्रा** का महत्व जगत को अज्ञान के महान् अंधकार से निकाल कर आत्म शक्तियों के विकास के पथ पर लानेवाले महान् उपकारी श्री-वीतरागभगवन्त के मोक्ष स्वरूप को जगत के बाल जीवों के समक्ष उपस्थित करने में है

सम्राट् सम्प्रति और मोगल-सम्राट् अकबर के दिल में धर्मार्गस्पृहा की अमर ज्योति इस ही रथ-यात्रा के उत्सवों से पैदा हुई थी

ऐसे महा-कल्याणकारी रथयात्रा के द्वारा आत्मा को पवित्र बनाने वास्ते प्रत्येक धर्मप्रेमी मुमुक्षुओं को नीचे लिखे कर्तव्यों का पालन करना जरूरी है

(अ) वीतराग के आदर्श गुणों का गुणगान वाले मधुर स्तुति, भजन, एवं उत्साह कीर्तन आदि का कार्यक्रम करते हुए वीतराग के प्रति आदर्श श्रद्धा व्यक्त करना

(आ) त्याग-मार्ग के प्रचारक तीर्थंकरों के लोकोत्तर-स्वरूप की महिमा को ध्यान में रख कर भगवान् की पालखी आदि शुद्ध वस्

पर अवगुण सरसव समा, निज अवगुण मेरु समान।
तो का निंदा करे पारकी? मूरख! आप निज मान॥

पहन कर किसी प्रकार की लज्जा न रखते हुए भक्ति-भाव के साथ स्वयं उठाना

(ड) जूते, बूट, चप्पल, सैंडल आदि तमाम चीजों का त्याग, तथा वीतराग के उपासक के नाते अपनी विवेक-बुद्धि की जागृति, एवं बीड़ी पान आदि का त्याग कर मुख-शुद्धि एवं व्यवस्थित रूप से विनय-भक्ति आदि शिष्ट-मर्यादाओं का यथार्थ पालन

(ट) भगवान की पालखी घर या दुकान के आगे आवे तब बड़े आदर के साथ यथा-शक्ति भेंट चढ़ा कर गहूँली आदि कर के वीतराग का बहुमान करना

(उ) वीतराग की वीतरागता और विश्ववत्सलता ध्यान में रखते हुए अनंत उपकारी तीर्थंकर देव परमात्मा के प्रति सच्चा कृतज्ञभाव प्रगट करने वास्ते शासन प्रभावना पोषक विविध साधनों से रथयात्रा के जुलूस को समृद्ध बना कर बाल-जीवों को सन्मार्ग-प्रेमी बनाना

ऐसे अनेक कर्तव्यों को गुरु-मुख से समझ कर विवेक के साथ उनका पालन करने से स्वपर-कल्याणकारी, शासन-प्रभावना-वर्द्धक रथयात्रादि कार्यों से आदर्श लाभ उठा सकता है भा० ५०९

सदा याद रक्खो !!! (२)

० [illegible] -मद-विरक्त और शुभ निश्चय के दो चक्रों के आधार पर ही जीवन-रथ आसानी से उन्नति के रास्ते बढ़ सकता है

परमतणो मर्म एक छे, जिम न बांधे कर्म।
एह मर्म जाण्या पछी, मिटे सवि भर्म ॥

० कि –सचाई और ईमानदारी की परीक्षा विषम–प्रसंग में ही होती है

• कि –जीवन–रूप नाव में तृष्णा का छेद पड़ जाने पर वह डूबने लगती है, और समझदारी के अभाव में वैर–विरोध, झगड़े और टंटेबाजी के पहाड़ से टकरा कर चूर–चूर हो जाती है

० कि –हरदम अपना हैया टटोलते रहो कि –"हम क्या कर रहे हैं? और वास्तव में "क्या करना चाहिए?"

० नीचेकी चार बातें सदा याद रखो!

बोलो कम	करो ज्यादह
बोलो कम	सोचो ज्यादह
बोलो कम	देखो ज्यादह
बोलो कम	दूसरों को बोलने का मौका ज्यादह दो.

–मा० सु० १०

जगद्गुरु की स्वर्गतिथि

आज का दिन वह है कि –जिस दिन अपन जैसे मूढ़ आत्माओं को भी भव्य आराधना के मार्ग पर चढ़ा कर जगत का सच्चा उद्धार करनेवाले स्वनामधन्य पू. जगद्गुरु आचार्यदेव श्री विजयहीर सूरीश्वरजी म. ने अपनी संयम–यात्रा की सुभग समाप्ति कर के नश्वर देह को छोड़ कर स्वर्ग के प्रति प्रयाण किया था

इससे तो आज की तिथि अपने प्राण–प्रिय तारकवर्य महान् आचार्य का वियोग कराके अपने को शोक पैदा करनेवाली है, परंतु

घर घर बाजा ना बजे, करत पुकार–पुकार।
प्रभु बिसारे पशु भये, परत चाम पर मार॥

नय–सापेक्ष श्रीजिन-शासन की प्रणालिका को समझनेवाले महानुभावों के लिए स्व–पर–कल्याण की मारक साधना कर के जीवन को धन्य बना कर पंडित–मरण की उच्च–दशा पानेवाले महापुरुषों की स्वर्गतिथि भी मुमुक्षु–जीवों के दिव्य अद्भुत धर्म-प्रेरणा की स्फूर्ति पैदा करती है

अत नीचे लिखी बातों को पढ़ कर जीवन को आदर्श–पवित्र आचार और विचार से मुनगल बनाने की चेष्टा करना जरूरी है

पू जगद्गुरु आ० श्री विजयहीर–सूरीश्वरजी महाराज के जीवन–प्रसग

वि स०	तिथि	स्थल	घटना
१५८३	मिगसर सुदि ९ सोम को	पालनपुर में	जन्म
१५९६	कार्तिक वदी २ सोम को	पाटण में	दीक्षा (१२ वर्ष ११ मास ८ दिन की उम्रमें)
१६०७ में २४ वें वर्षमें			पन्यास पद
१६०९ में २६ वें वर्षमें			वाचक पद
१६१० में		शिरोही में	आचार्य पद
१६११ में		पाटण में	आचार्य पद महोत्सव
१६२२ में			गच्छनायक पद
१६२९ में	जेठ विदी १३ को		मोगल–सम्राट् अकबर को प्रथम धर्मोपदेश
१६३९ से १६४२ तक			मोगल–सम्राट् को धर्मोपदेश
१६५२ में	भाद्रपद सुदी ११ को	ऊना (सौराष्ट्र)में	स्वर्गवास

लाख चोराशी योनिमां, फिर २ लीघो अवतार।
एकेकी योनि वली, अनंत अनती वार॥

जगद्गुरु आ. हीरविजयसूरि और सम्राट अकबर



सूरिजी की कठोर तपस्या

० ३०० उपवास,	० ३६०० उपवास
० २२५ छठ्ठ,	० आंबिल से वीशस्थानक पकी आराधना
० ७२ अट्ठम,	० गुरु म की आराधना के वास्ते १३ मास उपवास एकासणा-आंबेल आदि
० २००० आंबिल,	० २२ मास योगोद्वहन क्रिया आदि
० २००० नीवी	

दम्मत मत्र जात हा, थिर न रहे सदि कोय।
इस्यूं जाणो मठ्ठ फाजीए, हियडे विमासी जोय ॥

फल-प्राप्ति के लिये अधीर बनाती है स्वाभाविक रूपसे फल-प्राप्त करने का सही तरीका उसे सुहाता नहीं है, साथ ही एक ही फल पाकर उसमें सन्तुष्ट रहना भी उसे जँचता नहीं है वह तो सदा एक के बाद दूसरा और दूसरे के बाद तीसरा इस प्रकार अनेक फलों को असन्तुष्टतापूर्वक जल्दी जल्दी पाने वास्ते सट्टे के व्यापारीयों की ज्यों डावाडोल-मनोवृत्ति के चक्कर में फँसने में राजी होता है

अतः विवेक-पूर्वक आधुनिक शिक्षण की विकृतियों को हटाने का प्रयत्न करना उचित है. —भा० सु० १२

सदा याद रक्खो!!! (३)

कि—इन्सान की हुशियारी बुरे कामों में निपुणता हासिल करने में या अपनी स्वार्थांधता से दूसरों को प्रभावित करने में नहीं है, पर शुद्ध के जीवन की छोटी—बड़ी तमाम प्रवृत्ति द्वारा दूसरों को शांति पहुंचाने में है

० कि—विनय, विवेक और सदाचार के बल पर सुख—शांति और समृद्धि की इमारत का सच्चा सर्जन हो सकता है

० कि—बिना योग्यता के मिलने वाली सत्ता का दुरुपयोग यह ही अवनति का मुख्य मार्ग है

—भा० सु० १२ (प्रथम)

दोष दीजे निज कर्मने, जिण नवि कीधो धर्म।
धर्म विना सुख नवि मिले, ए जिनशासन मर्म॥

महानिर्यामक

महासार्थवाह



सदा याद रक्खो!!! (४)

० कि—आशा, भय और कामना का त्याग कर जो काम किया जाता है उसका सुंदर फल अवश्य मिलता है

० कि—जीवन की शुद्धि के वास्ते जरा आन्तरिक सद्गुणों के विकास के प्रति लापरवाही करते हुए मात्र बाह्याडंबर रूप दिखावटी दान, दया—आदि कर्तव्यों से अपने को सद्गुणों का निधान समझ लेने जैसी भयंकर—आत्म्य कोई गलती नहीं है

० कि—विचार और आचार का समन्वय करते रहते हुए प्रवृत्ति में विवेक और अवर्निवीअन का उपयोग करते रहना जरूरी है मा० सु० १३ (द्वितीय)

तीर्थंकरों का उपकार

मोह—मूढ प्राणी नानाविध अज्ञान—मूलक प्रवृत्तियाँ करके जीवन को विषम—समस्यामय बना देते हैं, उन्हें सन्मार्ग पर ला कर ज्ञान के उज्ज्वल प्रकाश में अपने कर्तव्य का भान करानेवाले श्री तीर्थंकर देव परमात्मा के शब्दातीत उपकार की मात्रा समझाने के लिए शास्त्रकार—महर्षियों ने एक रूपक इस तरह से समझाया है कि—

'जिस तरह महा—समुद्र के प्रवासी को जहाज की मजबूताई जितना आवश्यक है, उसी तरह जहाज चलाने वाले निपुण नियामी

आठ कन्या कोडी कंचन, तजी जेणे वली दूर।
थयर स्वामी ते वंदीए, नित उगमते सूर॥

और सुकानी की अयावश्यकता है चूँकि —होशियार जहाज—चालक के बिना सुदृढ भी जहाज समुद्र के पानी के भीतर छिपे गह वह २ भँवरों के चक्कर म फँस कर या पानीमें रहा मोटी—बडी पहाडीयों से टकरा कर चूर-चूर हो कर नष्ट हो जाता है, और शायद ऐसा नहीं भी हुआ तो भी निपुण जहाज-चालक क बिना जहाज शीघ्रता से समुद्र को पार नहीं कर सकता है

इस तरह ससार—रूप महासमुद्र म अज्ञान—मिथ्यात्व आदि के गहन भूँवर क कारण उन्मार्ग पर चढे गये एव **विषय—कषाय** के तूफान म फँस कर अपनी चाल से हट कर डाँवाडोल स्थिति मे झुलने वाले ससारी जीवों के **जीवन रूप जहाज** को **तीर्थंकर—परमात्मा सम्यक्‌ज्ञान** रूप सुकान की व्यवस्था जमा कर एव च **सम्यक्‌दर्शन** और **सम्यक्—चारित्र** क सहयोग रूप विशिष्ट होशियारी से बिना जोखम क ने—रवटक भवसमुद्र के सामने किनारे **मुक्ति रूप** महानगर म बडी कुशलता—पूर्वक पहुचा देते है

अत श्री तीर्थंकर देव परमात्मा ससार के तमाम जीवों क महान् उपकारी है, इस उपकार को व्यक्त करने वास्ते शास्त्रों में उ हे **'महा-निर्यामक"** कहते है (निर्यामक=जहाज को व्यवस्थित चलानेवाला)

भा० सु० १४

नव्वाणु सुर तणी, नित नित होय निर्माल्य।
नरभर सुर सुख भोगवे, ते शालिभद्र कुमार॥

विश्व के संरक्षक

पुरातन काल में धन-समृद्ध व्यापारी लोग पुरुषार्थ एवं व्यापार कुशलता की सफलता के शुभ-उद्देश्य से दूर-सुदूर देशों में व्यापार यात्रा का आयोजन करते थे, जिसमें अनेक साधन हीन वणिक्पुत्रों को अनेक प्रकार की सुविधायें दे कर अपने साथ दूर देश में ले जाते और रास्ते के नानाविध कष्टों से बचा कर अपनी साधन-संपत्ति का सदुपयोग करने और जंगलों की विकटता, डकैतों का उपद्रव एवं सफर की कठिनता के कारण धनोपार्जन के लिए देशांतर गमन करने की तीव्र इच्छा को मन मसोस कर रहनेवाले कई आवागीनों को ये उदार-चरित व्यापारी अपनी शक्तियों का समुचित लाभ देते

अत एव ये लोग प्राचीन काल में राज्य तंत्र के संचालक राजा-महाराजाओंके द्वारा सार्थवाह की मानप्रद उपाधि से विभूषित किये जाते थे

इस प्रकार इस जीवन-यात्रा मे अत्यंत जरूरी सम्यक् श्रद्धा, यथार्थ जानकारी एवं समुचित सदाचाररूप महामूली सम्पत्ति दे कर तथा राग द्वेष, विषय-वासना, मिथ्याग्रह आदि लुटेरोंसे एवं जन्म-जरा मरण आदि हिंसक पशुओं से बचाकर संसार रूप जंगल में से योग-क्षेम की कुशलता पूर्वक भव्य जीवों को पार उतारने वाले तीर्थंकर परमात्मा विश्व के प्राणीमात्र के संरक्षक हो कर उन को लोकोत्तर आम

गुण कीधा माने नहीं, अवगुण माडी मूल।
ते नर मगति छाडीए, पग पग मारया शूल॥

शक्तियों का परिचय शास्त्रकारने महासार्थवाह की उपमा से श्री उपासकदशा आवश्यक-निर्युक्ति आदि आगमों में दिया है

उस समय उन तीर्थंकरों के प्रति सच्ची कृतज्ञता एवं आदर-भाव व्यक्त करनेवाली उन की पूजा-भक्ति आदिमें समर्पण भाव से लगे रहना परम कर्त्तव्य है

—मा० सु० १५

सदा याद रक्खो!!! (५)

० कि -हर आदमी अपनी ही बुद्धि के पैमाने से हर चीज को समझने की चेष्टा करता है पर अपनी क्षुद्र-शक्तियों का यथार्थ भान हो कर वस्तु के यथार्थ स्वरूप को न समझ सकने की खुद की कमजोरी कभी भी अपने-आप महसूस नहीं करता है

० कि -समझदारी की सच्चाई का सनातन मानदण्ड यह है कि -खुद के विचार एवं मान्यताओं का कदाग्रह न होना

० कि -जगत के क्षणिक तुच्छ एवं असार पदार्थों के पीछे अज्ञानता वश जितनी अपनी दौड़-धूप है, उसका शतांश भी यदि विवेक, और यथार्थ समझदारी के साथ आत्म-हित कर प्रवृत्तियों में लगावें तो सच्ची शांति पा कर के ही रहेंगे —आ० कृ० १

सज्जन दुर्जन जाणीए, जब मुख बोले वाण।
सज्जन मुख अमृत लवे, दुर्जन विषनी खाण॥

धर्म क्रिया क्यों? और कैसे?

ज्ञानी भगवंतों ने धर्मकी आराधना से अनादि काल के अशुभ संस्कारों का ह्रास होना आवश्यक बताया है परंतु धर्मकी आराधना के समय यदि पूर्ण विवेक एवं वृत्तियों में सावधानी न रखी जाय तो धर्म की आराधना के फल-स्वरूप अनेक सांसारिक-कामनाओं के रूप में पुराने अशुभ-संस्कारों की पूंजी बढती जाती है जिससे तो "हमे के देने पड जाने"-की ज्यों या "छेने गई पूत को खो बैठी खसम" वाली बात जगत में चरितार्थ हो जाती है

अतः कल्याण-कामी मुमुक्षु धर्म-प्रेमी आत्माओं का पवित्र कर्तव्य होता है कि -हर कोई छोटी-बडी धर्म क्रिया के आयोजन के समय पूर्ण जागृति रखते हुए हरदम यह सोचते रहना जरूरी है कि-"मेरी धर्म-क्रियाओं का व्यावहारिक-जीवन मे क्या प्रभाव पैदा हुआ? एवं मेरे विचारों में सत्य का प्रतिभास कितना हुआ?"

यह बात तब ही संभवित हो सकती है जब कि -हर धर्म क्रिया को करते समय शास्त्रकार भगवंतो ने उस क्रिया के करने की जो पद्धति-ढंग या विधि का प्रतिपादन किया है, उसे ध्यानमें रख कर योग्य रूपसे यथाशक्ति धर्मक्रियाओं की प्रवृत्ति करने को तैयार बने

माया सुख संसारमां ते सुख सही ए असार।
धर्म कमावे सुख मिले, ते सुख नावे पार॥

प्रत्येक धर्मक्रिया विधि का पूर्ण उपयोग एवं अत्यंत आदर के साथ पुराने अशुभ संस्कारों की बिमारी हटाने वास्ते अत्युपयोगी रामबाण औषध के आसेवन की ज्यों बड़े प्रेम के साथ अंतर की शुभ-निष्ठा का बल दे कर विशिष्ट आत्मशक्ति की ताकात लगाने का सप्रयत्न ही उन्नति के पथ पर बढानेवाला धर्मक्रिया का यथार्थ आचरण कहा जाता है —आ० कु० २

आध्यात्मिक रामायण

आत्मा–रामचंद्रजी है,	**विवेक-लक्ष्मणजी है,**
सम्यक्त्व–जनक महाराज है	**समता सीताजी है,**
मोह–रावण है,	**धर्मप्रेम–हनुमानजी है,**
मन–पाताल देश है,	**तृष्णा–लंका नगरी है,**
संसार–समुद्र है,	**धर्म की आराधना-रामसेतु है,**

अर्थात्–**आत्मारामभाई** रूप रामचंद्रजी की **समता** रूप सीता (जो कि **सम्यक्त्व** रूप जनक–महाराज की पुत्री है) को **मोह** रूप रावण उठा कर **तृष्णा** रूप लंका नगरीमें ले जाता है

तब **धर्मप्रेम** रूप हनुमानजी की सहायता से **धर्म की सुदृढ आराधना** रूप रामसेतु के द्वारा **संसार–समुद्र** को पार कर के शुभ अध्यवसाय रूप वानर द्वीप के विद्याधरों की सेना की मददसे

को दिन कर कपूर तू, भावत नहीं लगार।
को दन रोटी कारणे भमतो घर घर बार॥

विवेकबुद्धि रूप लक्ष्मणजी मारफत **मोहरूप** रावण को मार कर अपनी **समता** रूप सीता को पा कर के **आत्मारामभाई** रूप रामचन्द्रजी परम–आनंद के भोक्ता बन जाते है

आत्मा रूप रामचंद्रजी को अपनी **समता** रूप सीता को पाने में मोहनीय कर्म के क्षयोपशम से पैदा होनेवाले **शुभ अध्यवसाय** रूप वानरसेना का और **धर्मप्रेम** रूप हनुमानजी की अत्यधिक उपयोगिता है

मोहनीय कर्म के क्षयोपशमसे पैदा होनेवाले शुभ अध्यवसायों को वानर–सेना का रुपक इस लिए दिया है कि–ये अध्यवसाय आत्मशक्ति की प्रबलता या हीनता को ले कर क्षण–क्षण में बंदर की ज्यों चपल–अतिचपल हुआ करते हैं, एक–से अध्यवसाय सदा किसी के भी टिकते नहीं, पलक–भरमें नरक–स्वर्ग और मोक्ष की भूमिका तक प्रसन्नचंद्र राजर्षि को ले जानेवाले ये मोहनीय–कर्म के अध्यवसाय **आत्मारामजी** और **विवेक–बुद्धि** नेतृत्व और **धर्मप्रेम** रूप हनुमान्जी की देखभाल के बिना समय २ पर अपनी करवट बदलते हुए विविध परिणाम पैदा करते रहते हैं

अतः इस **आध्यात्मिक–रामायण** को समझ कर अपने मोहनीय–कर्म के सच्चे विजय वास्ते प्रयत्न–शील होना जरुरी है

–भा० कृ० ३

कीधा कर्म न छुटीइ, जेहनो विषमो बंध।
ब्रह्मदत्त नर चक्कवइ, सोल वरस लगे अंध ॥

श्री नमस्कार महामंत्र का जाप क्यों? और कैसे

अनंत-उपकारी ज्ञानियों का हितकर यह उपदेश है कि—

जैन-धर्म के संस्कारों से सुवासित कुल में जन्म लेना अर्थात् आत्मशक्तियों को जागृत करने वास्ते कमर कस के तैयार होना

इस चीज की मकत सिद्धि पाना ही श्रावक-कुलमें जन्म लेने की सार्थकता है, और यह बात तब ही मुमुक्षु-जीवों के जीवन में सिद्ध हो सकती है-जब कि अपनी आत्मशक्तियों के असली स्वरूप को देख कर बैठे हुए कर्म के सामर्थ्य को पहचान कर उसे तोड़न वास्ते सच्चे दिल का पुरुषार्थ किया जाय, परंतु बिना साधन के अनादिकालीन कर्म-शत्रुओं को कैसे हटाया जाय?

अतः अपनी आत्म-शक्तियों की यथार्थ पहचान एवं सिद्धि करानेवाला श्रीनमस्कार महामंत्र रूप सुदृढ हथियार ले कर विवेकी साधक आत्मा को अपने जीवन का मौलिक सम्पत्ति कर्म-शत्रुओं के कब्जे से हस्तगत कर लेना चाहिए

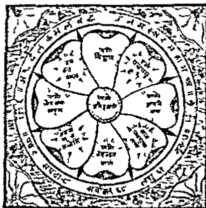
बिना हथियार के कुशल योद्धा भी रण-मैदान में क्या कर सके! अतः श्री नमस्कार महामंत्र के स्मरण रूप दिव्य-अस्त्र को उपयोग की जागृति पूर्वक काम में लेना आवश्यक है

श्री नमस्कार महामंत्र का जाप अनेक प्रकार से किया जाता है, परन्तु योगशास्त्र आदि ग्रंथों में अष्टदल-कमल के रूपमें श्री नमस्कार-महामंत्र का जाप सर्वश्रेष्ठ बताया है

पांच पांडव अतुलबली, ते भम्या वनवास।
महापुरुष जगमां बली, निराहार बारे मास॥

योगशास्त्र (प्र ८ श्लो-३३ से ३६) मे निर्दिष्ट

श्री अष्ट-दल-कमल बध-बद्ध



श्री नव-कार-महा-मंत्र-चित्र

अष्टदल कमल जाप का माहात्म्य

त्रिशुद्धया चिंतयन्तस्य, शतमष्टोत्तरं मुनिः ।
भुञ्जानोऽपि लभेतैव, चतुर्थतपसः फलं ॥

श्री नवकार-महामंत्र का अष्टदलकमल के रूपमें मन, वचन और काया की शुद्धि पूर्वक एकसौ आठ बार जाप करनेवाले मुनि खाते-पीते भी चतुर्थभक्त (एकासना, उपवास और एकासना) उपवास का लाभ प्राप्त कर सकते है

(श्री योगशास्त्र प्र ८ श्लो. ३६)

बूँद समाना समुद्रमें, जानत है सब कोय ।
समुद्र समाना बूँदमें, जाने विरला कोय ॥

ऐसे महाशक्तिनिधान दिव्य अस्त्र को पान के बाद उस के जाप के समय हरदम इस चीज को ठीक ध्यान में रखे रहना जरूरी है कि –"मेरी ज्ञानादि अनंत शक्तियों को दबा कर बैठे हुए कर्मों के आवरण को हटाने वास्ते इन महामहिमाशाली पंच-परमेष्ठियों का पवित्र आलंबन ले कर आत्म-स्वरूप के सच्चे भान को जागृत करने का मेरा यह सत्पुरुषार्थ है

इस चीज का यथोचित विचारणा के विकास में और तदनुसार जीवन का मूल-शक्तियां के व्यावहारिक सफलता में ही आत्म-कल्याण की अचूक सिद्धि है

इस प्रकार का श्री नवकार महामंत्र का जाप जीवन को पवित्र बनाता है

-आ० कु० ५ (४ का क्षय)

सदा याद रक्खो !!! (६)

० कि –मेरा जीवन पशुओं के तुल्य केवल स्वार्थवृत्ति के पोषण में बीत रहा है ? या जीवन की वास्तविक स्थिति को पहचान कर आदर्श परमार्थवृत्ति के विकास के वास्ते मैं कुछ कर रहा हूँ क्या ?

० कि –विचार के साथ प्रवृत्ति कर देने की मूर्खता से ही जगत के तमाम छोटे–बड़े तमाम दु:ख पैदा होते हैं, परन्तु विचार

सज्जन हारा ही भला, जीवन दे संसार।
हारा दरिये जायगा, जीता जपकी लार॥

और प्रवृत्ति के बीच विवेक का गण्णा लगा देने से उचित–अनुचित प्रवृत्तियों का यथार्थ भान हो कर दुःख पैदा करनेवाली अनुचित प्रवृत्तिए जीवनमें से धीरे हटती जाती है

० कि–"आचारः प्रथमो धर्मः" का सूत्र जीवन में उतार कर जानी हुई तात्विक बातों के द्वारा जीवन को पवित्र बनाने वास्ते यथाशक्य प्रयत्न से सदाचार के तरफ आगे कदम बढ़ाते रहना जरूरी है

० कि–मिथ्याभिमान और अन्तरिक–विचारों की अन्धता को हटाने वास्ते सत्समागम, शास्त्र–स्वाध्याय एवं सुदृढ गुणानुराग आदि सद्गुणों का विकास करना आवश्यक है

भा० कृ० ६

सदा याद रक्खो ! ! ! (७)

० कि:-धर्म की आराधना के समय चित्त की अस्वस्थता या चञ्चलता इस बात का प्रमाणित करती है कि –विचार–शुद्धि एव विवेक–बुद्धि की क्षति के कारण धर्म क्रिया का वास्तविक महत्त्व स्पष्ट रूपसे समझा नहीं है

० कि महत्ता के अत्युन्नत शिखर पर चढे हुए को भी आँख के एक पलकारे मे अवनति और विनाश का गहरी एवं अंधकार

न्हायो धोयो क्या भयो? मनका मैल न जाय।
मीन सदा जलमें रहे, धोवे गंध न जाय॥

पूर्ण गाढ़ में ढकेले देनेवाले मिथ्याभिमान, विकारों की गुलामी और स्वच्छंद-वृत्ति से सावचेत रहो!!!

० कि-किसी भी बात में अधिक मतभेद होने से असली बात की मौलिकता को क्षति नहीं पहुंचती है, क्षति तो सहिष्णुता, विचारकता, विशाल बुद्धि एवं निरामा-वृत्ति आदि के न होने से क्षुद्रबुद्धिवाले छेभग्गु अधूरे विचारकों से अत्यधिक होता है

—आ० क्र० ७

सदा याद रक्खो!!! (८)

० कि-दूसरों का बुरा करनेका या होनेका ख्याल ही अपने-आप की विचार-शक्ति को खत्म कर देता है, क्योंकि-खुद के जले बिना दियासलाई कभी भी दूसरों को जला सकती नहीं है

० कि-जीवन को सन्मार्ग पर टिकाये रखने के दो आधार स्तम्भ हैं, किसी के साथ गैर-बर्ताव करना नहीं और किसी के प्रति बिना किसी विवेक के अत्यधिक आदर-भाव बताना नहीं

० कि-जिसमें सारासार के विवेक की हैसियत, अपनी समझ और शक्तिका नपा-तुला यथार्थ भान एवं यथोचित देश-काल की पहचान है, वह सच्चा विचारक है

—आ० क्र० ८

प्रभु सुमरण कोढ़ी भला, गली गली पड़ती चाम।
कंचन देह जलाय दे, जो न भजे प्रभु नाम॥

सदा याद रखो !!! (९)

० कि –प्रत्येक व्यावहारिक अच्छी या बुरी घटना को विवेक–दृष्टि के द्वारा उसकी भूमिका के यथार्थ ज्ञान के साथ पहचानो। और फिर अपने जीवन के मौलिक सर्जन या विनाश में उसका कितना हिस्सा है? यह समझने के बाद ही अपना मत–अभिप्राय प्रकट करना उचित है अन्यथा तुच्छ–विचारों के प्रवाह में फँस कर दिखने में खराब–सी अशुभ घटनाओं से जीवन को उन्नति की राह पर ले जानेवाली प्रेरणाओं से वंचित रहना पड़ेगा

० कि –जिसके दिल में अनादिकालीन कुसंस्कारों के फंद से जीवन को मुक्त करने की छटपटाहट लगी है, वह सच्चा भाग्यशाली है

० कि —अच्छी बातों को समझने में जितनी देर नहीं लगती है, उससे दूनी मेहनत उनको मानकर दिल में उतारने में लगती है और मानी हुई अच्छी बातों को जीवन में उतार लेने के लिए तो अत्यधिक श्रम करना पड़ता है, इसी लिए **इने-गिने मानव ही सद्विचार और सदाचार के गंगा-सागर संगम को पा कर जीवन धन्य बना पाते हैं**

अतः **भले ही थोड़ा समझो !** पर, समझी हुई अच्छी बातों को दिल में ठीक से जमा कर जीवन में उतारने वास्ते सतत प्रयत्न करना जरूरी है

— आ० कु० ९

जितने तारे गगनमें उतने वैरी होय।
पूरब पुण्य जो तपे, बाल न बांका होय॥

सदा याद रक्खो!!! १०)

० . कि–ज्ञान की परिपक्व अवस्था से उठनेवाले त्याग–वैराग्य के शुभ अध्यवसायों के बल पर इन्द्रियों के विकार एव मानसिक कुविचारों को रोकने की चेष्टा करना जीवन–शुद्धि का राजमार्ग है

० कि –सत्कर्मों के करने के बाद उन्हें गुप्त रखना ही जीवन के लिए हितकर है, चूँकि पेड के मूल जितने धरती मे छिपे रहेंगे उतना ही पेड हरा–भरा रहेगा, सत्कर्म रूप वृक्ष का भी यह ही हाल है

• कि –हर आदमी को अपनी ही बात रुचिकर होती है, हर तरह से उसे ही समर्थित करते रहना वह अपना आवश्यक कर्तव्य समझता है अत हर आदमी के दृष्टिकोण को समझ कर उसकी बातों को समझने की चेष्टा करना उचित है —आ० कु० १०

सदा याद रक्खो!!! (११)

० कि–हर काम करने से पहेले दिल को टटोलो कि–सचमुच में क्या यह यह काम मेरी आवश्यकताओं का पूरक है कि वासनाओं का?

० वासनाओं की तृप्ति घी के द्वारा आग को बुझाने की ज्यों सर्वथा असभव है अत **वासना-पूर्ति के ध्येय से कोई भी काम मत करो!!!**

पाप छिपाया ना छीप, छीपे न मोटा भाग।
दाबी-दुबी ना रहे, रुई लपेटी आग॥

० कि—आत्मिक सद्विचारों के बल पर अपनी आवश्यकताओं का पृथक्करण किया करो।

चूँकि—आवश्यकताएं भी दो तरह की होती हैं स्वाभाविक (जिसकी पूर्ति के बिना शरीरादिका टिकाव ही नहीं हो सकता।) और—पैदा की हुई (जिन्हें कि अज्ञानवश वासनाओं से उठने पर भी पहचाना नहीं जाता है) इन दो में से स्वाभाविक आवश्यकताओं की पूर्ति के वास्ते ही संयम—विवेक के साथ प्रवृत्ति करना उचित है

० कि—दूसरों के गुण एवं अपने दोष पहचान लेने की क्षमता ही आत्म—कल्याण साधना की पूर्व—भूमिका है

—आ० कु० ११

सदा याद रक्खो !!! (१२)

० कि—अनीतिका आश्रय ही अवनतिका राज मार्ग है

० कि—आशातीत लाभ मिलने पर भी संतुष्ट न होना जीवन की क्षुद्रतम कक्षा का परिचायक है

० कि—किसी भी कार्य में असफलता मिलने पर उनमें से पराजय के बीजक खोज कर अमर आशा और अदम्य उत्साह के बल पर पुनरुत्थान का स्वर्ण अवसर प्राप्त करना उचित है

० कि—विवेकी वह कि जो उन्माद के साधनों के रहते भी मदमस्त न बने —आ० कु० १२

बडा भया तो क्या भया !, जैसे पेड खजूर।
पंथी कु छाया नहीं, फल लागे अति दूर॥

सदा याद रखो ! ! !

० विचार और विकार के झमेले मे फँसे हुए अज्ञानी प्राणीयो को अंतरात्मा की पुकार की सूझ न होते हुए भी वासनाओ की विवशता कई बार अंतरात्मा की आवाज की आडमें भयंकर पापाचरण मे फँसा देती है

० कि –विषयो का गुलाम। यथेच्छ रूपसे स्वीकारनेवाले अज्ञानी को सन्मार्ग एव सदाचार की दृढता क ...र ज्ञानी गुरु की आज्ञा मे रहना बधनकारक प्रतीत होता है यह ही खुद के जीवन की उन्नति का द्वार अपने हाथों से बंद कर देना है

० कि –" मै और मेरा " इन दो शब्दो के मोहजाल मॆं वास्तविक रूपसे आचार–धर्म की महिमा न समझ कर केवल शब्द पांडित्य के बल पर ज्ञानी कहलानेवाले भी फँस जाते है, तो फिर शास्त्रो को नही समझनेवाले अज्ञान–मूढ प्राणीओ का कहना ही क्या ?

–आ० कृ० १३

सात प्रकार की शुद्धि

प्रत्येक काम पद्धति से किया जाय तो वास्तविक सफलता के शिखर पर जीवन को ले जाया सकता है

अत विवेकी धर्मसाधक प्राणी को चाहिए कि –आत्मा को जीवन–शुद्धि के पथ पर आगे बढाने वास्ते अत्युपयोगी श्री वीतराग

काच कटोरा नयन–धन, मोती और मन।
इतना टुटा न मधे, लाखो करो जतन॥

इन भगवन की सेवा-पूजा या उपासना भी बड़ी समझदारी और जागरूकता के साथ करना जरूरी है

इस लिए शास्त्रों में वीतराग भगवंत की पूजा का शुभ उद्देश्य आन्तरिक राग-द्वेष आदि की मलिनता हटाने का बताया है

अतः द्रव्य से और भाव से शुद्धि स्वच्छता का ख्याल रखना पूजार्थी के लिए आवश्यक है

आन्तरिक भाव-शुद्धि के ध्येय को सामने रखते हुए यथाशक्य प्रयत्न से बाह्य-शुद्धि का भी उपयोग विवेक को रखना जरूरी है बाह्य-शुद्धि से मतलब मात्र शरीर की स्वच्छता से नहीं है, पर नीचे लिखी सात प्रकार की शुद्धि से है

> अंग वसन मन भूमिका, पूजोपकरण सार।
> न्यायद्रव्य विधिशुद्धता, शुद्धि सात प्रकार॥

अंगशुद्धि–छने हुए, परिमित जल से छोटे-बड़े जीवों की विराधना होने न पावे उस तरह शरीर की बाह्य अशुद्धि दूर करना

(साबुन से नहाना यह शरीर-शुद्धि के नाम पर भयंकर जीव-हिंसा का प्रतीक है)

वस्त्र शुद्धिः–पूजा के उपयोगी वस्त्र (पुरुषों के दो-धोती, उत्तरासङ्ग-(खेस)=दुपट्टा-मुखकोश वास्ते रुमाल शास्त्रीय नहीं है,

---

> एरण की चोरी करे, सूई का देवे दान।
> ऊपर चढ़के देखता, कब आवे विमान?॥

और स्रीयों के तीन–काचली, गावग और माड़ी) साफ सुथरे और चमक-भभकवाले न हो कर अपनी कक्षा के अनुरूप होना

मन शुद्धिः–पूजा करने के समय चाहे कितने भी उग्र राग द्वेष विषय-कषायों की तीव्र–तम भावनाओं के फंदे से वृत्तियों को छुडा कर वीतराग के गुणगान में एकाग्र हो रहना

भूमिका शुद्धिः–जिस स्थान पर पूजा आदि करे वह स्थान, आसपास का वातावरण, विषय-कषायों को उत्तेजित करने वाला न हो साथ अशुद्धि–दुर्गंध दूर करने के साथ वास्तविक रूपमें राग–द्वेष की दुर्गंध दूर करना जरूरी है.

पूजोपकरण शुद्धिः–पूजा के साधन कटोरी, कलश आदि चीजें साफ–सुथरी, स्वच्छ, टूट–फूट न हों, देखते ही मन प्रसन्न हो ऐसे सुंदर रखना

द्रव्य शुद्धिः–पूजा में काम आनेवाली केशर, चंदन, फूल आदि चीजें बिना किसी के साथ विश्वासघात आदि किये प्रामाणिकता से खुद के पैसे की लाई गई हों

विधिशुद्धताः–पूजा की शास्त्रीय विधिका यथाशक्य उपयोग रखते हुए यथाक्रम से पूजा करना तथा स्वच्छंदता से मरजी मुजब आगे–पीछे मन–चाहे ढंग से पूजा न करने का ख्याल रखना

—आ० कु० १४

खाली-छुछी जीभडी, बोले आल–पपाल।
बोलीने अलगी रहे, जूता खाय कपाल ॥

सदा याद रक्खो!!! (१४)

१— कि —संसार के पदार्थों की ममता और आन्तरिक विचारों की उधेड़-बुन में फँसे हुए संसारी जीवों को खुद की शक्तियों के विकास और सदुपयोग के द्वारा कल्याण का सीधा-सच्चा मार्ग बताने वाले महान् उपकारी ज्ञानियों के वचनों के प्रति सदा आदर-भाव रखना चाहिए

२— कि —किसी के दोषों को सुनो मत!
किसी की बुराईयों को देखो मत!!
कोई बुरा काम कर के होशियारी का प्रदर्शन मत करो!!!

३— कि महापुरुषों का जीवन ही शास्त्रों में निर्दिष्ट सन्मार्ग का नमूना है उस नमूने माफिक अपने जीवन को बनाना ही महापुरुषों के प्रति आदर्श श्रद्धाञ्जलि का सच्चा प्रतीक है. —आ० वृ० ०))

विवेक-बुद्धि

“विवेकी नरः पंडितः”

संसार का प्रत्येक पदार्थ उसे उपयोग में लानेवाले की बुद्धि एवं प्रवृत्ति के आधार पर अच्छा या बुरा हो जाता है

इसी लिए ज्ञानी विवेकी सज्जनों की दृष्टि में कोई चीज एकांत से बुरी या अच्छी नहीं होती है

काम क्रोध मद लोभकी, जब लग घटमें खाण।
तब लग पंडित-मूरख ही, दोनों एक समान.

क्योंकि—ज्यों २ ज्ञान की परिणति जीवन में बढ़ती जाती है त्यों २ संसार के भले-बुरे पदार्थों के प्रति समभाव-माध्यस्थ्य अपने-आप होने लगता है

अत एव विवेक-बुद्धि को जागृत रख कर समझदारी के साथ कोई भी काम किया जाता है, तो कभी भी कोई भौतिक पदार्थ की अच्छाई-बुराई की मीमांसा-समालोचना करने का मौका नहीं आता है

यह बात श्रमण भगवान् चरम-तीर्थंकर **श्री महावीरदेव परमात्माने** अपने अंतिम निर्वाण-समय के उपदेश रूप **श्री उत्तराध्ययन सूत्र में "अप्पा मे णदण वण, अप्पा मे सामली कूडो"** आदि गाथा से—

"अपना मोह-मूढ प्रवृत्ति और वृत्तियों के नचाये नाच-नखरों से उपार्जित दुष्कर्मों के फल-रूप विविध ताप-यातनाएँ आदि भोगने के रूपमें खुद की आत्मा खुद के वास्ते कंटकमय **शाल्मली** (सेमल का पेड़) वृक्ष का ज्यों बन जाता है,

और विवेक एवं ज्ञानीयों के वचनों की अधीनता के साथ शुभ वृत्तियों का सदुपयोग करते हुए हर काम करते रहने से अपनी आत्मा **नंदन** वन की त्यों ज्ञानादि-निर्मलगुणों के गुणानुरागसुगंधी फूलों से महक उठती है "

काका किसका धन हरे!, कोयल किसको देत।
मीठे वचन बोलके, जग अपना कर लेत॥

अत हर प्रवृत्ति के स य विचार, सकल्प, उर्मि, भावना, अध्यवसाय एव परिणामों को विवेक और ज्ञानीयों क वचनरूप गल्णे से छान कर पूरी समझदारी के साथ आगे कदम बढाना उचित है —आ० सु० १

धर्मक्रिया कैसी हो?

जीवन को शुद्ध बनाने वास्ते करणीय धर्मक्रियाओं को करते समय विचार एव परिणति की निर्मलता बनाने के लिए नीचे लिखे चार दोषों का त्याग कर आशय–शुद्धि पूर्वक धर्मक्रिया करना उचित है

"दग्ध शून्य ने अविधि-दोष अतिपरिणति जेह।
चार दोष छंडी भजो, धर्मक्रिया गुण-गेह॥"

दग्धदोष=तवे पर डाली हुई रोटी या अगारे में पडी हुई बाटी सम्हाल कर बारबार नहीं फेरने से जैसे जल जाती है, वैसे जो क्रिया की जाय उस क्रिया में बारबार उपयोग की जागृति रख कर विधि पूर्वक करने का ख्याल न रखने से वह क्रिया जली हुई रोटी-बाटी की ज्यों खराब रे फलशून्य हो जाती है

शून्यदोष–चालू क्रिया में उपयोग की जागृति या सावधानी न रखना, मन इधर–उधर दौडता रहे, फिर भी उसे काबू में रखने का प्रयत्न न करते हुए भेडिया–धसान=गाडरीया–प्रवाह की ज्यों मदता–पूर्वक धर्मक्रिया करना

क्रोध चढेला मदने, लागे नहीं उपदेश।
तेल तपे जल छांटता, मलगी उठे अशेष॥

अविधिदोष—धर्मक्रिया करने की शैली या यथार्थ प्रक्रिया को जानने की भी कोशिश न करना, या जानते हुए भी प्रमाद या लापरवाही से क्रिया करते समय विधि की जानकारी का उपयोग न रखना, सही तरीके से विधि पूर्वक धर्मक्रिया करने के लिए विचार शुद्धि भी न रखना आदि

अतिपरिणति दोष—शास्त्रकार—महर्षियों के बताये तरीके से निरपेक्ष बन कर मनमानी रीति से बिना सोचे-समझे शास्त्रों के वाक्यों को एकान्त-रूप से पकड़ कर दिखावे में बड़ी सुंदर आडंबर-पूर्ण, परंतु वास्तव में मौलिक सिद्धांतों से दूर—ऐसी क्रियाएं करना

यह दोष अपनी डेढ़ अक्कल का घमंड रखने वाले ज्ञानी और अज्ञानी के बीच त्रिशंकु जैसी हालत में रहनेवालों के जीवन में बहुधा पाया जाता है

उपरोक्त चारों दोषों का त्याग कर शुभ धर्म—क्रिया का पालन करने वास्ते प्रयत्नशील होना जरूरी है

—आ० सु० ?

क्या हो तो क्या करना? (१)

जन्म-जन्मांतर के दृढ अच्छे—बुरे संस्कारों के बल पर तरह-तरह की दुर्वृत्तियाँ उठती हैं, फलतः आत्मशक्ति का यथोचित नियंत्रण न होने पर नानाविध दुष्परिणाम बिना इच्छा के भी अनुभूत होते हैं,

---

गालो मद्दन करीए सदा, गाले गुमडा न थाय।
जे गमार—जन गाल दे, तेनु मुख गधाय॥

अतः ज्ञान-विवेक और मर्यादा के तट पर इन वृत्तियों को जीवन-विकास के कार्य में उपयोगी हो इस प्रकार का मोड़ दे देने में आशातीत सफलता पाई जाती है इस लिए नीचे बताये मुजब वृत्तियों का सदुपयोग करना आवश्यक है

॰ यदि रोनेका मन हो जाय तो–किसी की उन्नति पर ईर्ष्या भाव से रोते हुए अपने किये दुष्कर्मों पर रोना उचित है

॰ यदि देखने का मन हो जाय तो–किसी के छिद्र या दोषों को देखने के बजाय अपने दोषों का निरीक्षण करते रहना चाहिए

॰ यदि तोडने का मन हो जाय तो–किसी का अच्छा काम या कोई परोपकारी कार्य या एवं किसी के दिल को न तोडते हुए अनेक जन्मों से लदे हुए कर्मों के बंधन को तोडने का सत्प्रयत्न करना चाहिए

॰ यदि बिगाडने का मन हो जाय तो–जीवन को नष्ट-भ्रष्ट करनेवाले सांसारिक पदार्थों की बुनियाद पर उठनेवाले राग-द्वेष से विमुख हो कर किसी का नुकसान न करते हुए कर्मों की चित्र-विचित्र रचना को बिगाडने-मिटिया मेट करने वास्ते कमर कसना योग्य है.

॰ यदि छल-प्रपंच-विश्वासघात करने का दिल हो जाय तो–अनेक अज्ञान-मूढ मोहग्रस्त संसारी जीवों को अपना कूट-माया

धन-धन श्री अरिहंतने ! जेणे ओलखाव्यो लोक।
ते प्रभुनी पूजा विना, जनम गमायो फोक॥

आत्म फसानेवाले **मनजीभाई** का ज्ञान-ध्यान, संयम-वैराग्य आदि द्वारा पकड़ कर सन्मार्ग पर लाने वास्ते विवेकी राजनीति काममें लाना उचित है —आ० सु० २

क्या हो तो क्या करना? (२)

संसार के खराब पदार्थ को भी विवेक और बुद्धिमानी के सफल उपयोग से अच्छे में पलटाया जा सकता है, और संसार को बुरे पदार्थ की नफरत से छुड़ा कर विवेक-पूर्वक हर चीज का उपयोग करने की छूट-बत्ती दी जा सकती है

अतः व्यावहारिक दुर्वासनाओं को आन्तरिक विवेक-बुद्धि के प्रभाव से सदुपयोग के मार्ग पर लगाने वास्ते नीचे की बातों पर पूरा ध्यान दीजिए

० यदि **गुस्सा करने का मन** हो जाय तो—अज्ञानमूलकता के कारण सहज हो जानेवाली गल्तीयों के निमित्त से दूसरों पर गुस्सा न करते हुए मूल-बूथ नष्ट कर अज्ञान के चक्कर में फँसानेवाले **कर्मों के कारणों पर समझदारी के साथ गुस्सा कीजिए!** ताकि -ज्ञान और विवेक की मात्रा की क्षति के कारण बारबार गल्तीए दुहराई न जायँ

० घमंड-अभिमान करने का मन हो जाय तो—आत्मस्वरूप से सर्वथा भिन्न, जड़, पौद्गलिक, बाह्य पदार्थों की पुण्याधीन प्राप्ति

घणा वेगवाळी जुओ काळ-घटी।
वधु विश्व तेमा पडयु जेम वटी ॥

में व्यर्थ न गुमाते हुए खुद के-ज्ञानादि-गुणों की अगणित शक्तियों का यथार्थ स्वत्वाभिमान पैदा कीजिए!!!

लोभ-इच्छाओं की प्रबलता हो जाय तो-जिन संसार के पदार्थों को पाने-भोगने या टिकाने वास्ते बडे से बडे उत्पत्ति गया महाराजा भी अपने भरसक प्रयत्न से मर्जी माफिक यथार्थ रूपम सफल न हो पाये, उन जगत के सुन्दरी-तुच्छ पदार्थों को पाने की सटपट में जीवन को फिजूल में दुःखी न बनाते हुए यथायोग्य जीवन-विकास के पथ पर बढानेवाले गुणगान-अंतर्निरीक्षण-शास्त्र-स्वाध्याय इंद्रियनिग्रह आदि आन्तरिक गुणों के उपार्जन में इच्छाओं को जोड दो. —आ० सु० ४

वया हो तो क्या करना? (३)

जीवन की मूल-शक्तियां यदि विवेक पूर्वक काममें ली जायें तो आग, पानी, हवा आदि की तरह अत्युपयोगी हो जाती है, पर यदि समझदारी न हो और कुसंस्कारों के बहाव में बह कर यथोचित रूप से वृत्तियों का उपयोग करना न जाना तो वे ही जीवन-शक्तियां जीवन को खतरे में डाल देती हैं,

अतः ज्ञानीयों के वचनों को ठीक रूप से समझ कर तरंग रूपमें उठनेवाली वृत्तियों का योग्य रूप से सदुपयोग करने का ख्याल रखना उचित है

दली मारशे देह मौना दलीने।
रमे रीझता रिद्धि-सिद्धि रलीने॥

० यदि मारने का मन हो जाय तो—अज्ञानवश अपराध कर के अपनी अज्ञानता के नमूने रूप क्रोध के शिकार बनने वाले किसी दूसरे को मारने की दुष्प्रवृत्ति द्वारा प्रवृत्तियों को मलिन करने की अपेक्षा अपनी दुर्वृत्तियों को ही कार्य—रुपमें परिणत न होने दे कर मन मारने का सत्प्रयत्न करते रहना चाहिए.

० यदि मनोरंजनार्थ नाटक—सीनेमा देखने का मन हो जाय तो—अशुभ राग—द्वेष को बढानेवाले इस शौख के बदले आंतर दृष्टि खोल कर कर्मों की विटंबना से जगत की रंग—भूमि पर नाना विध खेलते हुए अपने आत्मा के व अन्य आत्माओं के चित्र—विचित्र खेल—तमाशे देखना सीख कर नये कर्मों के बंधन से अपने आप को बचाना जरूरी है

० यदि खुशामद करना मजूर हो तो—व्यावहारिक पदार्थों की पूर्ति वासनाओं के आधीन दुनिया के मानवी से गैर कानूनी ढंग से करने की अपेक्षा आत्मा के सहज ज्ञानादि गुणों के सच्चे स्वामी श्री अरिहंतों के बताये मार्ग पर चलनेवाले सद्गुरुओं की सच्चे दिल से करना जरूरी है- ताकि—जीवन उन्मार्ग से बचे एवं कर्तव्य का भान सदाकाल जागृत बना रहे

—आ० सु० ५

थयु द्रव्य भेगु गयु बार वाटे।
दळे आंधळी ने चलो श्वान चाटे ॥

नवपदाराधना का महत्त्व

जैन शासन में धर्म की आराधना आत्मा को कर्मों के बंधन से मुक्त करने में उपयोगी संवर-निर्जरा के तत्त्व को बढानेवाली है

परंतु धर्माराधना के अनेक प्रकारों में से श्री नवपदजी की आराधना जीवन को सर्वांग शुद्ध और मौलिक रूप से आत्मिक गुणों की शीघ्र प्राप्ति करानेवाली है

क्योंकि–इस में आत्मा को विकास के पथ पर आगे बढाने में उपयोगी देव–गुरु और धर्म रूप तीनों ही तत्त्व मुख्य रूप से उपासनीय बनाये गये हैं

तपस्या के अनेक प्रकारों में भी श्री नवपदजी की ओली का बड़ा महत्त्व है इस की आराधना करनेवाले रसनिग्रह और धर्म-ध्यान की अभिवृद्धि सरलता से कर पाते हैं इस तप के महान् आराधक महाराजा श्रीपाल एवं श्रीमती मयणासुंदरी जी का आदर्श जीवन इन दिनों में इसी उद्देश्य से सुनाया जाता है फलतः आराधक आत्मा को आराधना के वास्ते जरूरी विचार शुद्धि और आचार-पवित्रता का बल अनायास मिल जाता है

हर साल नवपदजी ओली के दिन आते हैं और जाते हैं पर जीवन में इन के द्वारा विकारों का निग्रह, आत्मिक गुणों की अभिवृद्धि

जीवन-जोबन राजमद, अविचल रहे न कोय।
जो दिन जाय सत्संग में, जीवन का फल सोय॥

अब राग-द्वेष की न्यूनता कितनी हुई? यह हरदम सोचते रह कर विवेक पूर्वक **श्री नवपदजी की आराधना** करनी चाहिए

—आ० सु० ६

श्री अरिहंतपदमहिमा

अरिहंत पद ध्यातो थको, दव्वह गुण पज्जाय रे।
भेद-छेद करी आतमा, अरिहंत रूपी थाय रे॥

आज से चालू होनेवाली **श्री नवपदजी की आराधना** के प्रथम दिन की आराधना के महत्त्व को समझानेवाला यह दुहा आज की **अरिहंत पद** की आराधना के आदर्श को समझाता है।

द्रव्य गुण और पर्यायसे अरिहंतों का ध्यान करने से आत्मा भेद-छेद कर के अरिहंत-स्वरूप बन जाता है।

अर्थात्—अरिहंत द्रव्य से शुद्धात्म स्वरूप है, गुण से शुद्ध अनंत ज्ञानादि गुणों से सम्पन्न है, और पर्यायसे प्राणी-मात्र के हित-कल्याण-साधना की तत्परता रूप श्री तीर्थंकर पद का अनुभव कर रहे हैं

और आराधक आत्मा खुद तो द्रव्य से धर्म की अशुद्धिवाला है, गुण से मलिन क्षायोपशमिकादि अपूर्ण ज्ञानादि गुण सहित है, और पर्याय से संसारी दशा का अनुभव कर रहा है।

भाग्य हीन को नहीं मिले, भली वस्तु का जोग।
द्राक्ष-पाक जब होत है, होत काक-चंचु में रोग॥

इस तरह परमात्मा और अपने बीच भेद का विचार करते हुए इस भेद की दीवाल को खड़ी करनेवाले कर्मों के आवरण का छेद करने का ध्येय-आदर्श निश्चित कर के की जानेवाली धर्म की आराधना के फल स्वरूप आराधक आत्मा शुद्ध ही अरिहत-स्वरूप बन सकता है।

यह है आज की आराधना का रहस्य।

—आ० शु० ७

श्री सिद्ध पद महिमा

रूपातीत स्वभाव जे, केवल दंसण नाणी रे।
ते ध्याता निज आतमा होय सिद्ध गुणखाणी रे॥

आज सिद्धपद की आराधना गत दिन की आराधना के बल पर प्राप्त की हुई साची आराधक बुद्धि एवं भेद-छेद करने की शक्ति के फल स्वरूप मुक्ति-पद को प्राप्त करने के ध्येय से करने का है।

आज के पद का परमार्थ यह है कि—

संसार के पौद्गलिक तमाम पदार्थ रूप यानि वर्ण-गंध-रस-स्पर्शवाले हैं, अर्थात्—सिद्धों के रूपातीत याने शुद्ध निरंजन ज्ञानादि गुणों से भरपूर-स्वरूप का विचार कर के संसार के पौद्गल पदार्थों का आकर्षण कम करने का ध्येय निश्चित रूप से अपनी विचारणा में सदाकाल बनाये रखना आवश्यक है।

फकीर सब को खा रही, फीकर सब का पीर।
फीकर की फाकी करे, वह ही सच्चा फकीर॥

इस तरह की शुभ विचारणा और विवेकपूर्ण आराधना के बल पर अपना जीवन कर्मों के बंधन से सर्वथा मुक्त हो सकता है, और सिद्ध स्वरूप की प्राप्ति हो कर आज की आराधना का यथार्थ फल शीघ्र सरलतापूर्वक पाया जा सकता है। —आ० सु० ८

श्री आचार्य पद महिमा

ध्याता आचारज भला, महामंत्र शुभ ध्यानी रे।
पंच प्रस्थाने आतमा, आचारज होय प्राणी रे॥

आज से श्री नवपद की आराधना में अति महत्व का कार्यक्रम चालू होता है

गत दो दिन की आराधना तो मात्र जीवन के उच्चस्तरको पहचानने और पाने वास्ते जरूरी सच्चे उपकारी की सेवा का आदर्श कायम करने के लिए था—पर! आज से तो उस आदर्श को व्यावहारिक रूप देकर अरिहंतों की आज्ञानुसार जीवन को शुद्ध बनाने वास्ते योग्य प्रयत्नशील प्राणी की आचारभूमिका का विकास करने का है

आचार्य पद का आराधन यानि—

"स्वयं शुद्ध जीवन पालना और दूसरों को भी वैसा पालनेकी आदर्श प्रेरणा देना" यह आदर्श सामने रख कर

बड़ा बड़ाई ना करे, बड़ा न बोले बोल।
हीरा मुख से ना कहे, लाख हमारा मोल॥

बातों के जमाखर्च छोडना और दूसरों की गल्तीयें निकालने की दुर्वृत्ति पर विजय पा कर विवेक के साथ शुद्ध की क्षतियों का संशोधन करते रहना है

आज क दुहेमें सुम्मिन और उस के अवांतर भेद रूप पाच प्रस्थान (मंत्र समूह) के ध्यान के बल पर स्व–पर कल्याण साधना की क्षमता पा कर आचार्य पद के रहस्य को संक्षेप मे बताया है।

— आ० सू० ९

श्री उपाध्याय पद महिमा

तप सज्झाये रत सदा, द्वादश अगनो ध्याता रे।
उपाध्याय तेहिज आतमा, जग बंधव जग भ्राता रे॥

गत दिन की आराधना द्वारा जीवन शुद्धि के लिए नियामक रूप से आचार की भूमिकाको शुद्ध बनाने के प्रयत्न को सफल बनाने के लिए आज की आराधना अत्यंत उपयोगी है।

चूँकि —आज की आराधना आराधक आत्माओं को रागादि दोषों पर सम्पूर्ण जय पाने के उद्देश्य से तीर्थंकर भगवंतो के एकांत कल्याण - कर उपदेश के वास्तविक रहस्य को समज कर अनादि–काल से पुष्ट हुई दुर्वृत्तिओं को जड–मूल से दबा देने के लिए परम की है.

बूरी दुर्जन की प्रीतडी, भली सज्जन की आग।
बादल ज्युं गरमी करे, तब बरसन की

अर्थात्—उपाध्याय भगवन्त श्रुतज्ञान द्वारा संसारी जीवों को वास्तविक मार्गदर्शन शुद्ध के जीवन को उन्नत बनाने का देते हैं, उसके आधार पर जीवन को परम-विशुद्ध सनातन सत्य के उच्च ध्येय के नजदीक ले जाने का अविरत प्रयत्न करते रहने में आज की आराधना की सफलता है

शास्त्रों का ज्ञान गुरुगम के साथ शास्त्रों के प्रति आदर भक्ति भावपूर्वक पाया जाय तो ही जीवन को शुद्ध बनाने में वह उपयोगी हो सकता है, यह बात भी आराधकों को सदा याद रखना चाहिए

आज का दुहा भी तप स्वाध्यायमें मग्न बन कर संसार के प्राणी मात्र के प्रति अपूर्व भावदयापूर्ण वात्सल्य बता कर प्रभु वीतराग के सिद्धान्तों को समझानेवाले श्री उपाध्याय भगवंतों की अतुल महिमा बताते हैं

—आ० सु० १०

श्री साधु पद महिमा

अप्रमत्त जे नित रहे, नवि हरखे नवि शोचे रे।
साधु सुधा ते आतमा, शु मुंडे शु लोचे रे॥

आज आराधक आत्माओं को गत दिन की आराधनाओं की सफल साधना के रूपमें व्यवस्थित आत्मा शुद्धि की प्रक्रिया जमा कर

सत-वचन बरसे सुधा, श्रोता कुंभ-समान।
ढका मोहका ढकना, पडे न घट में ज्ञान॥

अपने अशुभ संस्कारों से सचमुच छुटकारा पाने का सत्प्रयत्न करने का लक्ष्य निर्धारित करना क्या है?

गत दिन की आराधना में विनय, गुरु भक्ति, जिज्ञासा–बुद्धि एवं बड़ी नम्रता के साथ जो कुछ भी सैद्धान्तिक तत्त्वज्ञान या नीतिपरक शुद्धि के आधार विचार शुद्धि का पोषक ज्ञान पाया हो उसे आचरणा एवं व्यावहारिकता में लाने के लिए आज सामुपस्थी आराधना विवेक बुद्धि के साथ करने की है।

जिससे कि–भली बातों का जानकारी से ही तुष्ट न होते हुए हितकर कल्याण–साधना के प्रगतिमय उच्च विराम के पथ पर आगे कदम बढ़ते रहा जाय।

शासन–मान्य साधुओं की सदाचारिता का निचोड़ आज के युग में बताया है कि—

अपनी जीवन साधना के पवित्र उद्देश्य की पूर्ति में तन्मय रहते हुए शुभाशुभ कर्मों के उदय से होनेवाले सुख–दुःख के प्रसंगों में मानसिक समता खोये बिना समभाव का अभ्यास करते हुए आत्मिक संतोष की मात्रा में वृद्धि करते रहना यह ही साधुपद का मुख्य आदर्श है।

इस आदर्श को पूर्ण रूपसे जीवन में उतार न सकनेवाले भी आराधक आराधक–भाव की प्रधानता रख कर उस आदर्श को जीवन में उतारने का प्रयत्न करते रहे हैं। —आ० सु० ११

अधिकार को पाय कर, कीया न कछु उपकार।
ताके ही अधिकार में, न रो आदि अंकार

श्री दर्शन पद महिमा

शम–संवेगादिक गुणा, क्षय उपशम जे आवे रे।
दर्शन तेहिज आतमा, शु होय नाम धरावे रे॥

श्री नवपद की आराधना करनेवाले भव्यात्माओं को आज अत्यंत महत्त्व की आराधना करनी है, जीवन–शुद्धि का प्रधान आदर्श सम्पन्न करने का मुख्य ध्येय आज की आराधना में स्पष्ट रूपसे जीवन में प्रति बिंबित करने का है।

हर पदार्थ को उसके असली स्वरूप में समज कर उसकी सार–सारता के यथार्थ निर्णयपूर्वक विचार–शीलता और विवेक–बुद्धि का यथार्थ समन्वय कर के वास्तविक ढंग से जीवन–शक्तियों का सदुपयोग करते रहना, यह है आज की आराधना का परमार्थ!

विचार–शुद्धि और दृष्टि की निर्मलता ही सफलता के आधार–स्तंभ है, अतः धर्म की आराधना द्वारा जीवन–शुद्धि का कार्य सम्पन्न करने वास्ते दर्शन पद की आराधना कर के जीवन में सच्चे–झूठे विचारों की उधेड़बुन में असली विचारकता के ह्रास को रोक कर जीवन–शक्ति को पनपने देने में सम्यक् प्रकार से दृष्टि की निर्मलता का सहयोग ही अत्यंत आवश्यक है.

ग्रंथ–पंथ सब जगत के, बात बतावत दोय।
सुख दीने सुख होते है, दुःख दीने दुःख होय॥

संसार के मोहक पदार्थों की मायाजाल को हटा देना दर्शन पद का मर्म है, उससे उसी स्वाद की पहली पाले बिना सहज नहीं होती है, उसी तरह वासनाओं की प्रबलता को तोड़े बिना धर्म की आराधना दुःशक्यसी है

अत कर्मसत्ता के बंधनों को परिपुष्ट करनेवाले आश्रवों का दर्शन करानेवाली पौद्गलिक ममता पर नियंत्रण पाना दर्शन पद की आराधना का परमार्थ प्रत्येक विवेकी आराधक प्राणी को समझना आवश्यक है

श्रद्धा के दृढ़ में भी सम्यग्दर्शन का परिचय साधु या श्रावक के बाह्य आचरणों पर ही केवल आधारित न बनाते हुए वास्तविक रूप से मोहनीय कर्म के क्षयोपशमसे होनेवाले शम-संवेग आदि अभ्यंतर गुणों के विकास पर अवलंबित बता कर आन्तरिक विकास के लिये प्रयत्नशील बने रहने का महत्त्व बताया है।

—आ० हु० १२

ज्ञान पद महिमा

ज्ञानावरणीय जे कर्म छे, क्षय उपशम तस थाय रे।
तो हुए एहिज आतमा, ज्ञान अबोधता जाय रे॥

विवेकी आराधकों को अपनी आराधना के परमार्थ को समझाने वाले अतिमहत्त्व के ज्ञान के रहस्य को समझना आवश्यक है

साधु सो जो साधे काया, कोडी एक न राखे माया।
लेवे एक न देवे दोय सो य नाम साधु का होय॥

संसार के हर प्राणीकी अपेक्षा मानव को जो महत्त्व दिया गया है वह मात्र ज्ञान की विशेषता को ले कर ही, परन्तु ज्ञान वह ही जीवन को लाभप्रद व उपयोगी माना गया है, जो कि खुद की प्रवृत्तियों की छानबीन करने की शक्ति देवे और विवेक से पवित्र कर्त्तव्यों का परिपालन हो सके, अयथा बुद्धिछल, वाक्छल और प्रवृत्ति छल के अटपट चक्कर में जीवन फँस जाता है, और साधना की तमाम प्रवृत्ति जीवन के रहस्य को बहुत पेचिदा और दुष्प्राप्य बना देती है

अतः ज्ञान को एक महान प्रकाश या तेज पुञ्ज के रूपमें समज कर उसके आलोक में अज्ञान, मोह, मिथ्यात्व, एवं राग-द्वेष के कल्पित क्रमों का गहन अंधकार टिक नहीं पाता है,

इस चीज को ठीक ढंग से समज कर आज ज्ञान-पद की आराधना कर के पुस्तकों का अक्षरज्ञान या वाक्चातुरी एवं शब्दपंडिताई में जीवन का श्रेय न समझते हुए हर पदार्थ के मार्मिक स्वरूप की पहचान के साथ कर्त्तव्य-निर्णायक बुद्धि से प्रकाशित यथार्थ अनुभव ज्ञान प्राप्त करने की कोशिश करनी चाहिए।

ज्ञान शब्द से पदार्थ की मात्र जानकारी पा लेनेका अर्थ समजने का नहीं है, पर उस के असली स्वरूप का परिचय पा कर उस से अपने जीवन में होनेवाले

साकर तजे न सरसता, सोनक तजे न क्षेर।
सज्जन तजे न सज्जनता, दुर्जन तजे न वेर॥

लाभ-हानि का हिसाब लगा कर योग्य प्रवृत्ति-शीलता में सहायक होना ही यथार्थ ज्ञान है।

अत एव आज के दुदम ज्ञानावरणीय कर्म के यथार्थ क्षयोपशम के आधार पर अनादि-काल की अबोधता-अज्ञानता दूर हो कर सच्चे ज्ञान का महिमा बनाया है।

श्री चारित्र पद महिमा

श्री नवपद की आराधना का मुख्य ध्येय आत्म की आराधना से सम्पन्न होना है.

अनादिकालीन अशुभ प्रवृत्तियों की तैयार में मुमुक्षु आत्मा की विवेक-बुद्धि मलिनगामी हो जाती है, अत दवाइ खाते हुए रोगीको जितना ध्यान परहेजी पालन का रखना होता है, वैसा ही सावधानी अपनी आराधना तहस-नहस न हो जाय, इस का पूरा उपयोग आज चारित्र पद की आराधना द्वारा संवर-भाव का प्रधानतावाली परिणति के बल पर रखना आवश्यक है

गत दिन की आराधना की सफलता का आधार था विवेक और सम्यग्ज्ञान के पवित्र संगम से उठनेवाली सभी मुमुक्षुता एव कल्याण साधना के फलस्वरूप "ज्ञानस्य फलं विरतिः" सूत्र को जीवन में व्यवहारिक ढंग से उतारने में है

परमेश्वर से प्रीत और, दुनियादारीमे फँसना।
कभ हु दोनु ना बनें, आटा खाना और भसना ॥

इस लिए नवपद के आराधक भव्यात्मा यथाशक्य प्रयत्न से सांसारिक मोहमाया के कार्यों से कुछ मोड़कर आत्म कल्याण के उद्देश्य से संवर-निर्जरा के वर्तनों बढाने तरफ जागृति पैदा करनी चाहिए

अन्यथा चौमासे के पूर से नदी का पानी बढने पर पत्थरों की चट्टान जिस तरह अपने उपरसे पानी को पसार होने देने पर भी भीतर से शुष्क ही बनी रहती है, उस तरह दुनिया को समझाने वास्ते वाक्-चतुराई, शब्द-पटिताई और वाणी-विलास की कुशलता पा कर केवल शुष्क-ज्ञान की सीमा में जीवन वास्तविक अनुभव के आनंद से शून्य बन कर हाथ में दीया ले करके कुएँमें गिरने जैसी अक्षम्य गल्ती बार बार होती रहेगी

अतः विवेक और ज्ञान के परिपाक रूप यथार्थ-मार्ग के प्रति आगे-कदम बढते रहने के लिए सफल चेष्टा करते रहें

आज के दहे में शुद्ध आत्मलक्षी विचारों का सतत मनन, मोह-वासनाओं का ह्रास और आत्म-स्वभाव-रमणता को चारित्र का आदर्श बता कर के-सद्गुणों के विकास के लिए प्रत्येक आराधक आत्मा को लाल बत्ती बता कर केवल वेश पहनने मात्र से विरतिधारी बन जाने का मिथ्या-संतोष दूर हटाने का यत्न किया है। —आ० सु० १४

जा जगतमा अभिमान तो, कदी न करशो कोय।
शेर तणे माथे किहाक, सवाशेर पण होय॥

अत तप का अर्थ शरीर को सूखा देने का या भूखे मारने का न समझते हुए वृत्तियों के प्रवाह को सूखा देना और मन को भूखे मारने के मुख्य अर्थ को जीवन म उतारने की कोशिश करने में आज की आराधना की सफलता है।

आज के दुहमें आराधना के प्राण समान आराधक भाव की उच्च-कोटि का निरूपण किया है, आराधक-भाव याने अनादिकालीन वासनाओं पर निग्रह पाने के प्रयत्न को चालू रखने की सतत तत्परता, इस के लिए इन्द्रियसंयम एवं परिणति की निर्मलता मुख्य चीज है, इन्ही दो गुणो के बल पर विचारों की यथार्थ शुद्धि हो कर अनादि कालीन मोह की वासना के उछाले से आगामी दिन के पारणे के विचारों को रोक कर तप पद की आराधना यथार्थ रूप मे करने के लिए प्रत्येक विवेकी नवपद के आराधक को सावधान रहना जरुरी है

—आ० गु० १५

श्री नवपद की आराधना का रहस्य

श्री जैन शासनमें सर्व आराधनाओं की अपेक्षा नवपद की आराधना को सर्वोत्तम बताने का मुख्य कारण गुरुगम द्वारा प्रत्येक आराधक को जरुरी है, वह यह है कि —

जेनी गरज पडे सदा, तेने केम तजाय।।
बाले छे घर आग पण, घरमां एज रखाय॥

आत्मा के विशिष्ट-गुणों के विकास में नवपद की आराधना सम्पूर्ण-रूप से सहयोग देती है, कोई भी गुण इस की आराधना द्वारा विकसित न हो ऐसा हो सकता नहीं है.

इस चीज को समझाते हुए शास्त्रकारोंने खेत का रूपक नीचे मुजब बताया है

आत्मा यह सुन्दर खेत है, उसे यथाप्रवृत्ति आदि करण-रूप हलों के द्वारा जोता जाता है, उस में सम्यग्-दर्शन रूप उज्ज्वल-निर्मल बीज बोया जाता है ज्ञान का शुभ प्रकाश उस बीज के विकास में सहायक बनता है, दर्शन रूप बीज को सुरक्षित रखने वास्ते चारित्र की बाड उपयोगी होती है, एवं तप-रूप अग्नि से दर्शन रूप बीज का बिगाडनेवाले अशुभ तत्त्व जल कर खतम हो जाते हैं, बाद में साधु रूपी काले बादल बरसते हैं, तब उपाध्याय रूपी हरे अंकुर पैदा होते हैं, बाद आचार्य पद के पीले फूल लगते हैं, फिर अरिहंत रूप श्वेतफल प्रगट होता है और आखरी में पके हुए फल के रूप में सिद्ध पद रूप फल प्राप्त होता है

इस तरह अंतरंग गुणोंके विकास के लिए नवपद की आराधना अति सुन्दर एवं उपयोगी है, परंतु ऐसी अपूर्व आराधना सफल तब ही हो सकती है, जब कि ज्ञानीओंने बताये हुए इन पदों के रहस्यों को ध्यान में रख कर हर क्रिया करने का उपयोग रखा जाय

आँटी काढे अक्ल थकी, गूँच पडे न सुझाय।
ताणीने तोडे नहीं, तो घर-सूत्र चलाय

हर **श्री नवपदजी** की ओली में ऐसे संस्कारों की वृद्धि होती रहे और आराधना से सुवासित जीवन बने, इस के लिए प्रत्येक विवेकी मुमुक्षु को जागृति बनाये रखना आवश्यक है

—क्षा० क० ?

दान धर्म क्यों? और कैसे?

आर्य-संस्कृति से सर्वाधित जीवन-चर्या से परिचित हर कोई मानव **दान** शब्द से अपनी चीज दूसरे को देने का मतलब जानता ही होता है, परंतु हर चीज के स्वरूप का ज्ञान उस के असली फल की प्राप्ति से सफल होता है, यदि यथार्थ-रूप में फल प्राप्त न हो तो विवेक का उपयोग कर के मूल-स्वरूप के ज्ञान की प्रामाणिकता जाँचना पड़ता है

अतः **दान** के द्वारा प्राप्त करने लायक आत्म-शक्तियों के विकास के मानदण्ड से सोचने पर जगत के अनेकविध मानवों में से इने-गिने कुछ ही भावुक **दान** की गूढ़ परिभाषा को जान कर यथार्थ रूप में विचार-शुद्धि के तत्त्व को पा सकते है

वह परिभाषा यह है कि —

अनादिकालीन पौद्गलिक पदार्थों की ममता को छोड़ कर पूर्ण निःस्पृह बनने के वास्ते जरूरी परिणाम-शुद्धि का पोषण

अति घणु न ताणीए, ताण्ये तुटी जाय।
तुट्या पछी जो सांधीये, वचे गांठ रही जाय॥

दान के द्वारा हो और हर जीव को विविध विटंबनाओं में फंसानेवाली परिग्रहसंज्ञा पर निग्रह प्राप्त हो.

बारबार "हर संसारी चीज को लेउं-लेउं" ऐसी उठने वाली भावना पर निग्रह कर सभी छोटे या बड़े संसार के गुणवान, या गरीब-दुःखी के उपयोग में आवे ऐसी मनोवृत्ति बना कर "देउं देउं" की भावना का विकास होना-यह ही दान धर्म का परमार्थ है.

दान देकर सामाजिक मुख्ता की प्राप्ति हो, या "देउंगा तो धर्म होगा पुण्य बढ़ेगा, गये जन्म में नहीं दिया है तो अभी मैं दुःखी हो गया हूं—' इत्यादि भावनाओं लेकर किया जानेवाला स्ववृद्धि-पोषक दान व्यावहारिक दृष्टि से उपयोगी होते हुए भी वास्तविकता के दृष्टिकोण से संसार के मोह या द्वेष के घटने की या जीवन-शुद्धि का मार्ग—यह दान नहीं हो सकता है.

अतः विचारों को शास्त्रानुकूल बना कर अनादिकालीन मोह की वासना घटाने वास्ते दान देने का विवेक रखना जरूरी है.
—का० क० ?

शीयल- ब्रह्मचर्य क्यों और कैसे ?

जगत का कोई धर्म ऐसा नहीं जो कि विषय-विकार की प्रवृत्ति को अधर्म का आचरण न समझता हो।

विषम करे तो विष विष, अवला सूझे उपाय।
काणो वादीनो कांडियो, मूषक सर्प मुख जाय॥

वास्तविक जीवन-शुद्धि के तत्त्व को न समझने पर भी स्वभावतः हर मानव में सदाचार के तर्फ झुकाव थोडे बहुत अंशमें होता ही है, चाहे वह खुद के आचरण द्वारा न हो, तो भी दूसरों से तो वह इसीकी इच्छा रखेगा, कैसा भी व्यभिचारी या विषय लपट मानव के दिलमें भी खुद की बहू-बेटियों के प्रति किसी की मलिन दृष्टि भी सहसा आवेश पैदा करेगी ही, पशुओं में भी यह बात पाई जाती है।

इतना होते भी—"ससार के प्राणी सदाचारमय जीवन का आनन्द मानते क्यों नहीं ? " क्यों उन्हें दुराचार से सचमुच नफरत नहीं होती ? " " किस लिए वे सदाचार को कायम रखनेवाले शास्त्रीय-सामाजिक एवं धार्मिक नियमों को बंधनरूप समझते हैं ? "

आदि विचारणीय प्रश्न मुज्ञ मानों के दिल में उठ सकते हैं

इस के बारे में विवेकीओं की मुमुक्षुता को सफल बनाने की गरज से कल्याण-साधना के पथ-निर्देश के प्रसंग में निष्कारण-उपकारी जगवत्सल परम-तारक ज्ञानीयोंने निचोड के रूप में फरमाया है कि —

मार्ग-दर्शन देने वाले बुद्धिमानों की खुद की अपूर्णता के कारण सदाचार-ब्रह्मचर्य के बारे में संसार के लोगोंने अपूर्ण मान्यता समज रक्खी है, सदाचार और ब्रह्मचर्य से मतलब मात्र स्त्री संयोग

सात वेंतना सर्व ज्ञण, किंमत अक्कल-तुल्य ।
मळ्या कागळ हुंडीना, आंक प्रमाणे मूल्य ॥

न करना या पशु क्रीडाम प्रवृत्ति न करना " इतना ही सकुचित अर्थ बहुधा समझा जाता है.

वास्तव मे ब्रह्म शब्द से आत्मा के शुद्ध सच्चिदानन्दमय स्वरुप को समझ कर चर्य का अर्थ तदनुकूल योग्य प्रवृत्ति- करना, ऐसा विशाल अर्थ समझना और जानना अत्यावश्यक है

इस अर्थ के जानने पर ही " व्यवहार मे स्त्री का परित्याग करने पर भी इन्द्रियों के विषयों पर निग्रह या वासनाओं पर सयम प्राप्त न होने पर मूल लक्ष्य से अपनी साधना कितनी दूर निकल जाती है "' इस का वास्तविक भान हो जायगा

अमल मे किसी प्रकार के विचारों के अधीन हुए बिना आन्तरिक शक्तियों के विकास के कार्य मे जुट जाना ही ब्रह्मचर्य का परमार्थ है. — का० क० ३

तपस्या कैसे की जाय?

कोई भी धर्म-क्रिया की आराधना से अनादिकालीन मोह के कुसंस्कारों पर निग्रह प्राप्त करना, यह ही मुमुक्षु का सफल कर्त्तव्य वीतराग परमात्मा के शासन मे माना गया है

अत तपस्या करनेवाले भावुक भव्यात्माओं को विकारों के फंदे से जीवन को छुडाने के लिए वास्तविक रूप से आभ्यन्तर तप का

योग्य रीते उपयोगथी, दुर्गुण पण बदलाय।
करीए क्रोध असत्य पर, तो ते गुण कहेवाय

उद्देश्य में बाह्य तप के छ भेदों का क्रमशः यथोत्तर पालन-आसेवन करने का उपयोग रखना जरूरी है

अभ्यन्तर तप का रहस्य है कि —

आन्तरिक परिणामों में से कषाय और विकारों की मलिनता हटा कर ज्ञानादि गुण पोषक शुद्ध चित्त वृत्ति का बल बढाना

तथा बाह्य तप से मतलब है कि —

मलिन मनो-वृत्ति को क्रियात्मक स्वरूप देनेवाले विषय और कषायों के बाह्य-व्यावहारिक स्वरूप को रोकने के लिए शरीर-इन्द्रियें और सुकुमालता पर निग्रह पाना।

वर्तमान समय में आभ्यन्तर तप की सिद्धि का उद्देश्य करीब २ भूला-सा गया है, केवल बाह्य तप की आचरणा और वह भी मात्र भूखे रहना या दुनिया के लोग तपस्वी नाम से संबोधन करे ले इतना ही लक्ष्य अज्ञान वश कुछ महात्माओं का हो गया है

अतः बाह्य तप में भी ऊनोदरी, वृत्तिसंक्षेप, रस-त्याग, शरीर की सुकुमालता का त्याग आदि का विशेष उपयोग रख कर उपवास, आंबिल, एकासना आदि तप का आसेवन करना चाहिए

बाह्य तप के द्वारा जीवन-शुद्धि के तत्त्व को पाने के लिए आभ्यन्तर तप का आसेवन अन्तर्निरीक्षण, दोषों का पर्या-

---

नरम-गरम मलीने नभे, नमे न सरखा वेय।
रहे रागमां देवता, दारुमां न रहेय॥

लोचन एवं कर्मनिर्जरा में अनुपयोगी स्वाध्याय-ध्यान के लिए म'त उपयोगशील रहना चाहिए

ऐसे स्वनोम ढग से तप का आसेवन करनेवाले भव्यात्मा महापुरुषों के बताये कर्म निर्जरा का मन्चा लाभ पा सकते हैं

—का० कृ० ४

भावना से मुक्ति का रहस्य

व्यवहार में देखा जाता है कि—एक ही काम करनेवाले की भावना की विचित्रता के कारण परिस्थिति सम-विषम हो जाती है

विचार और अंतरगशक्ति के समन्वय के साथ भावनाओं का जो स्तर जमता है वह ही इष्ट-सिद्धि को देनेवाला होता है

शास्त्रीय परिभाषा में भी आराधक आत्माओं के मोहनीय कर्म के क्षयोपशम के आधार पर उठनेवाली राग-द्वेष की कमी ही तमाम धर्म की क्रियाओं को निर्जरा का फल देने की ताकात पैदा करती है

शास्त्रों में "भावना के विना सब लूखा" का लौकिक कथन को ले कर भाव-धर्म की महिमा गाई है, यह भाव मानसिक विचारों की पवित्रता से मर्यादित नहीं है, पर—आत्मा के मोहनीय कर्म के क्षयोपशम के आधार पर उठनेवाले प्रशस्त अध्यवसायों को भाव शब्द से माना गया है

जुठा-बोलानु जुओ, बधु जूंठमा जाय ॥
बीछी करडे माडने, साधु जूंठ मनाय ॥

कर्मों के बंधमें जैसे राग द्वेष के परिणाम मुख्य हैं वैसे ही कर्मों की निर्जरा मे राग-द्वेष और विषय-कषायों की हानि मुख्य कारण है

श्री भरत चक्रवर्ती पट्खण्ड के भोगविलास का अनुभव करते हुए भी भावना की शुद्धि के बल से आरीसा भुवनमे केवलज्ञान पा सके, वह मात्र विचारणा रूप भाव नहीं, पर अतरग विषयासक्ति और भोगलालसा के निग्रहवाली वास्तविक आत्म-कल्याण की भावना की तत्परता सूचक परिणामों की मुख्यतावाला अतरंग परिणामरूप भाव था

शक्ति-साधन-सामग्री आदि के होते भी मात्र विचारणा पर से भावना-भावित होने का दावा कर लेना वास्तविक मर्यादा शास्त्र भाव-धर्म की अज्ञानता-प्रदर्शित करना है

अत आत्मा के पुराने अशुभ सस्कारों के ह्रास के ध्येय के साथ विकार-वासना पर विजय पा लेने के इरादे को सच्चा भाव कहते हैं, और वह दान, शील, और तप धर्म की महिमा बना कर उनमे कर्म निर्जरा की ताकात पैदा करता है, इस दृष्टि कोण से—

भावे जिनवर पूजीये, भावे दीजे दान ।
भावे भावना भावना भावीए भावे केवलज्ञान ॥

जेनु कारज जे करे, बीजाथी नवि थाय ।
दीपक प्रगटे क्रोड दश, रवि विण रात न जाय ॥

इस दूहे के परमार्थ को समझ कर छोटा-बड़ी की भावना न भाव पर धर्मा-धार्मिक कौसी भावना का अभ्यास कर.

— पा० टू० ५

धर्म के चार भेद क्यों?

वीतराग परमात्मा के शासन में सामान्यतः धर्म के चार भेद बताये हैं, दान शील, तप भाव यह बात जैन कुल में पैदा होने वाले सरकारी भावुकों से छिपी नहीं है, पर धर्म के इन चार भेदों के निरूपण के पीछे ज्ञानीयों का क्या आशय है, यह भी विवेकबुद्धि से समझना आवश्यक है

संसार के नानाविध दुःखों की परंपरा वासनाओं की तृप्ति के नाम पर उठानेवाली मोहनीय-कर्म की भिन्न २ अवस्था के कारण जीवात्मा के शुद्ध के विचार एवं प्रवृत्ति के वेगस-कर्तव्यों से पैदा होती है, जिन कर्तव्यों की पृष्ठ-भूमिका को संज्ञा शब्द से शास्त्रों में बताई है, और उसके चार भेद बताये हैं—आहारसंज्ञा, भयसंज्ञा मैथुनसंज्ञा, परिग्रहसंज्ञा.

इन चार संज्ञाओं पर निग्रह पाने के लिए धर्म के चार भेद बताये हैं, अर्थात्—

यथार्थ रूप से दानधर्म की आराधना निःस्पृहता के मुख्य ध्येय से करने पर परिग्रह संज्ञा का निग्रह होता है।

ज्यां जेनी जन्यां वसे, ते स्थले ते बलवान्।
जलमां बल ग्राहनुं, स्थलमां बल श्वान॥

वास्तविक दृष्टि से आत्मिक गुणों के यथार्थ विकास के अनुकूल सदाचार को जीवन में उतारने के ध्येय से शील धर्म का आसेवन करने से मैथुन संज्ञा पर विजय होता है।

कर्म निर्जरा के ध्येय से आहार लोलुपता पर संयम करते हुए तप धर्म का आसेवन आहारसंज्ञा पर काबू प्राप्त करवाता है।

यथार्थ आत्म-शक्ति के विकास से उठनेवाले ज्ञानादि सद्‌गुणों की वृद्धि और आत्मा के शुद्ध, सच्चिदानंदमय, निर्विकार स्वरूप के परिचय के साथ कर्म निर्जरा के लक्ष्य को दृढ़ बना कर भाव धर्म का परिपालन आत्मा को बात-बात में पौद्गलिक पदार्थों के नुकसान या विनाश के धोखे से उठनेवाली भयसंज्ञा को समूल नष्ट कर देता है

इस प्रकार, दान, शील, तप और भावधर्म की आराधना करके आत्मा को विषम-कर्मों के बंधनों में फँसाकर रखनेवाली परिग्रह, मैथुन, आहार और भय-संज्ञा पर क्रमशः विजय प्राप्त करना सुज्ञ विवेकी का कर्त्तव्य है।

—का० कृ० ६

सदा याद रखो !!!

० विवेक याने सत्य-असत्य, हित-अहित, कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य एवं हेय-उपादेय का यथार्थ निर्णय इस के सदुपयोग से जीवन सद्‌गुणों की खुशबू से महक उठता है।

दुर्जनने गुण दीजिए, करे आप उपकार।
प्रथम हणे देनारने, मर्कट कर तलवार॥

अत प्राचीन काल म जिस प्रकार वणझारे विविध माल–समान बैलों पर लाद कर देशान्तरों में जाते और उस में खूब पैसा कमाते थे, उस दृष्टान्त का एक रूपक शास्त्रकार भगवंतोंने अज्ञान–मूढ प्राणीयों की प्रवृत्तियों का यथार्थ विश्लेषण करते हुए बताया है कि —

नरभव नगर सोहामणुं वणझारा रे।
पामीने करजे व्यापार अहो मोरा नायक रे॥

किसी समृद्ध वणझारे को बैलों पर खूब सामान लाद कर देशान्तर म जाते समय उस की पत्नी जिस प्रकार मंगमण–हित–शिक्षा देती हो उस प्रकार ज्ञानीयोंने इस असार रूप अटवी में नानाविध उपाधियों सेन्रस्त जीवात्मा रूप वणझारे को सुमति रूप स्त्री समझाती हुई कहती है कि —ओ मेरे प्राणनाथ ' मनुष्य भव रूप सुंदर नगर–शहर को पा कर कुछ जरा सप्रयत्न करना और मैं बताउ उस ढंग से व्यापार करना।

सत्तावन संवरतणी वणझारा रे,
पोठ भरजे उदार अहो मोरा०॥

शुभ परिणाम विचित्रता वणझारा रे,
करीयाणां बहु मूल–अहो मोरा०॥

गुणी–जनमां अवगुण कहे, ते अवगुणी प्रमाण।
कडवी साकरने कहे, जन ते रोगी जाण॥

संसार के सुखासन में [illegible] धर्मों के [illegible] ज्ञान, और [illegible] के [illegible] के [illegible] को [illegible]-[illegible], जो [illegible] [illegible] के शुभ मनोरथ [illegible] जिनकी [illegible] [illegible]

मोक्ष नगर माता मारी [illegible] रे,
सर्वे जिन [illegible]-[illegible] मोग।।

[illegible] मोक्षरूपी नगर में ज्ञान के लिए [illegible] होना-[illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

[illegible] मोक्ष नगर [illegible] और [illegible] [illegible] [illegible] की [illegible] [illegible] [illegible] की [illegible] [illegible] [illegible]

क्रोध दावानल ओल्हो [illegible] रे,
मान शिखर-गिरिराज महा मोग।।
ओलगड़ो इच्छे करी [illegible] रे,
सारधार पर पाज भली मोग।।

हे स्वामिनाथ! [illegible] में [illegible] [illegible] है, [illegible] [illegible], [illegible]-[illegible] [illegible] [illegible]-[illegible] [illegible] [illegible] है [illegible] [illegible] —

दुर्जन [illegible] निज धनी, घटे न सज्जन मान।
निज [illegible], [illegible] [illegible] [illegible] जहान

पहले तो क्रोध रूप बडा भयकर—प्रचड सल्गता हुआ **दावानल** आप को सामन मिलेगा, पर घबडाना मत ! **क्षमा** के उदात्त जल से उसे शात कर देना.

फिर आगे चलने पर **मानरूप** बडा विकट पर्वत सामने मिलेगा, उसे **नम्रता** क द्वारा धीरे २ पार करना और हर काममें सावधानी बनाये रखना

> पखजाल माया तणी वणझारा रे,
> तिहा नही करजो विश्राम अहो मोरा०
> खाडी मनोरथ भटतणी वणझारा रे,
> ते पूरणनु नहीं काम—अहो मोरा०

फिर आगे माया की गहन **घास की झाडी** मिलेगी, वहा भूल करके भी विश्राम नहीं करना, अन्यथा तमाम सत्प्रयत्न बरबाद हो जायेंगे

उस के आगे एक **गड्ढे** के किनारे **मनोरथ** नामका ब्राह्मण बैठा हुआ मिलेगा और वह दागने में जरा—सा परतु मायापूर्ण अपरपार उस गड्ढे को भर देने वास्ते बारबार तुम्हे प्रलोभित करेगा, पर ! उस की बात तक सुनना नहीं।

> राग–द्वेष दोय चोरटा वणझारा रे,
> वाटमा करशे हेरान–अहो मोरा॥

संस्टनीं शका करे, तेहथी काइ नवि थाय ।
शीखे तरवा शी रीते, जो जलमा नहिं जाय ॥

०विद्वानों के जीवन में शास्त्रीय बातों का प्रतिबिंब नहीं होता है, तो व्यवहार-मूढ लोग जीवन-शुद्धि के तत्व की सच्ची पहचान न होने के कारण शास्त्र-ज्ञान की आड में स्वार्थ की गन्दगी छिपाने की दुष्प्रवृत्ति दिखाने लग जाते हैं, इसलिए समझदार-विद्वानों को अपने जीवन की मर्यादा बनाने उपरात व्यवहार-शुद्धि का भी पूर्ण ख्याल रखना चाहिए।

० साँप काटे हुए व्यक्ति को साँप के जहर के कारण अत्यंत कडुआ भी लींबडा मधुर मालूम होता है, उस तरह अज्ञान और मोह के कारण नितान्त दुःख से परिपूर्ण भी जगत के पदार्थ संसारी जीवों को सुखशांति के श्रेष्ठ साधन मालूम पडते हैं सचमुच में तो जगत के पदार्थों के द्वारा अत्यंत अशांति एवं दुःख ही नसीब होता है

—का० कु० ९

सदा याद रखो!!!

० विचार और कर्त्तव्यों की शुद्ध भूमिका परिस्थितियों के यथार्थ विवेक के साथ आन्तरिक विचार-शुद्धि के बल पर हो पाती है अतः योग्य गुरु-निश्रा में रह कर ज्ञान और कर्त्तव्यों की भूमिका बनानी चाहिए

० अपने-आप की क्षतियों को सच्चे स्वरूप में पहचान कर उसे हटाने का सत्प्रयत्न करे, वह सच्चा ज्ञानी है.

केंक काम अभ्यासना, पण नहिं बुद्धि प्रकाश।
नटडी नाचे दोर पर, अक्ल नहिं अभ्यास॥

० इंद्रियों के विकार एवं मानसिक-कुविचारों को ज्ञान की परिपक्व-अवस्था से उठनेवाले त्याग-वैराग्य के शुभ अध्यवसायों के बल पर रोकने की चेष्टा करना जीवन-शुद्धि का राज-मार्ग है

— ज्ञा० कु० १०

सदा याद रखो!!! (१४)

० आचार में कमजोर आत्मा जितना नुकसान संसार के मूढ जीवों के तत्त्व-दर्शन के क्षेत्र में नहीं करता है, उससे अधिक अनर्थ खुद के आचारों की कमजोरी छिपा कर भी गलती को इकरार न करने के विचारों की कमजोरी करती है

० संयोगवश हो जानेवाली आचारों की विषमताओं को छिपाने का दुष्प्रयत्न न करते हुए सत्य वस्तु का सच्चे दिल से इकरार करते रहना जरूरी है.

० इन्द्रिय और मन की वृत्तिए सदा प्रवृत्तिशील होती है, अतः अशुभ-वातावरण से बचते रह कर सदा अपनी वृत्तियोंको महा-पुरुषों के समागम, शास्त्र स्वाध्याय, आत्मचिंतन आदि शुभ कार्यों में लगानी चाहिए।

० बुद्धि और समझदारी का उपयोग दूसरों के दोष या छिद्रों की गवेषणा में करना अपने हाथों अपने विनाश को आमन्त्रण देने वाले दुर्गुणों का पोषण करता है.

विण विवेकनो मानवी, समजो पशु समान।
वानरने पण छे जुओ, हाथ पग मुख कान॥

० अपने निकास के कार्य में बुद्धि-समझदारी का सदुपयोग सद्गुणों के विकास द्वारा करते रहना जरूरी है।

—का० क० ११

सदा याद रक्खो !!! (१५)

० बिना विवेक का ज्ञान दिमाग में चाहे कितना भी भरा हो, पर' हेय-उपादेय का असली निर्णय कर सफल प्रवृत्ति कराने में समर्थ न होने के कारण समय पर खुद के काम में न आ सकनेवाले तिजोरी में भरे हुए धन की ज्यों करीब २ निष्फल ही है.

०ज्यों२ पदार्थों को सोचने—समझने को शक्ति का विकास हो, त्यों २ अज्ञान के फलरूप खोटे कामों को छोड़ कर शुभ कामों में आगे कदम बढते रहने की शक्ति भी विकसित होनी चाहिए, अन्यथा ज्ञान का दुरुपयोग हो कर खुद की गल्तीयों को सुधारनेके बदले उसे छिपाने का दुस्साहस करने की स्वाभाविक प्रवृत्ति होती रहती है.

० विचारों और प्रवृत्तिओं के बीच विवेक का गरणा लगाये बिना हरदम नाना प्रकार की अनुचित प्रवृत्तियों का उत्थान जीवनमें होता रहता है

—का० क० १२

शोक न करिए प्रवरथी, लाभ यशो के हाण ?।
जगमा मूरख जन करे, मुआ प्रथम मोंकाण ॥

दीपावली पर्व की महत्ता घनत्रयोदशी का रहस्य

वीतराग भगवंतों के बताये हुए सिद्धांतों को समझकर उचित कर्तव्य दिशा का निर्णय करनेवाले विवेकी सज्जनों को भली-भांति यह बात जानना जरूरी है कि—आज से दीपावली पर्व का त्यौहार जो चालू होता है उसे कैसे मनाया जाय।

संसार के पुद्गल-प्रेमी अज्ञान-मूढ लोगोंने तो ऐहिक जीवनके वातावरण को लेकर विषयेच्छाएं कामनाएं एवं मौज-मजाह की भावनाओं की पूर्ति करने के ढंगसे त्यौहारों को मनाने का उचित मान रखा है, परंतु विवेक और समझदारी का थोड़ा भी सदुपयोग करने पर हर किसी को यह प्रतीत हो सकता है कि—

प्रकाश और आनंदकी लहरें जीवन में फैलाने वाले इस दीपावली के त्यौहार के प्रसंग पर अज्ञान, अविवेक, विचार-हीनता आदि को लेकर दिल बहलानेके नाम पर विविध प्रकारके फटाकडे और दारु-खाना फोड़ कर हजारों-लाखों रुपयोंका धूँआ करके दुनिया को अपनी विचार-शून्यता एवं बसमझदारी का नमूना बताने सिवाय और क्या चीज है!

अब विवेकीओं को इस त्यौहार के असली स्वरूप को ज्ञानी गुरु और शास्त्रकारों की व्याख्या के बल पर समझ कर चरम-तीर्थंकर प्रभु महावीर देव परमात्मा तमाम कर्मोंके बंधन से मुक्त हो कर

नव समजे भावार्थने, करे कादनु काई।
फानस सलगावो लक्षु, नारयु भरदा मांहि॥

मुक्तिमें पधारे, इस चीज के प्रतीक रूपमें अपने अंतर में भरे हुए अज्ञान के अंधकार को हटा कर अपनी अविवेकपूर्ण विषम प्रवृत्तियों का थाम कर योग्य प्रवृत्तियों द्वारा उच्च प्रकाश के पथ पर आगे कदम बढ़ते हुए जीवन की सर्वोच्च विकास की भूमिका पर ले जाने वाले दीपकों की श्रेणि प्रकट कर इस त्यौहार को प्रकाश के पर्वके रूपमें मनाना चाहिए

जिसमें आज धनत्रयोदशी का दिन होनेसे प्रकाश के पर्व की सफलता वास्ते धन—संपत्ति के भौतिक स्वरूप की संभाल करना नहीं है, पर वह धन संपत्ति सोना—चांदी के टुकड़े या जड़ भौतिक सामग्री के रूपमें न समझते हुए जीवन शुद्धि और सर्वांगीण विकास के लक्ष्यसे आंतरिक गुण—सम्पत्ति, विचार—शुद्धि और विवेक दशा के महामूल्य खजाने को सम्हाल कर भूतकालीन क्षतियों का पुनरावर्तन न हो कर भाविमें जीवनशुद्धि के अनुकूल सद्विचार—विवेक की अमूल्य संपत्ति का ज़ुटाव बना रहे

यह है आज के दिनका रहस्य.

—का० कृ० १३

ज्योतिषथी जो जोशीओ, भविष्य जाणे सोय।
तो जोशीनी पुत्रीने, रंडापो नवि होय॥

दीपावली पर्व की महत्ता

काली चौदश-रूपचौदश का रहस्य

जैन शासन के पर्व या त्योहारों का अवलोकन विवेक-बुद्धि से न समझने के कारण पर्वो के आयोजन के पीछे रहे हुए ज्ञानीयो के आशय की सफलता लोकजीवन में नहीं हो पाती है

दीपावली के लिए भी करीब २ ऐसा ही हुआ है

देखिये! पर्व शब्द का अर्थ शब्द-कोषों में गांठ बताया है, ईख-गन्ने (शेलडी) के हर गांठ में अलग २ रस होता है और उसी गांठ में ही इक्षु (शेलडी) के नैसर्गिक बीजोंकी सत्ता होती है, इस तरह जैन धर्म की आराधना का लाभ न उठा सकनेवालों के वास्ते ज्ञानीयोंने साप्ताहिक, पाक्षिक, मासिक आदि पर्वो की योजना की है, इससे इन दिनों में सामायिक क्षमा से प्रसन्न रहकर जीवनशुद्धि के उदात्त कार्य में प्रयोगात्मक कार्य कुछ करें-परन्तु आजकल आमोद-प्रमोद मौज-आनन्द एवं विलासिता के पोषण के रूप में ही दीवाली पर्व मनाया जाता है

अत: दीपावली की यथार्थ आराधना करने वास्ते नीचे की बात पर ध्यान दीजिए:—

सग अधर्मीना करे, धर्मी पण पीडाय।
जेम चोरना संगते, शाह केदमां जाय॥

दीपावली पर्व परमतीर्थंकर परमात्मा श्री महावीर देव के निर्वाण से सम्बंधित है

अतः निर्वाण शब्द का अर्थ समझना जरूरी है–निर्वाण शब्द का अर्थ जैन शास्त्रों की परिभाषा के आधार पर "बुझ जाना" होता है, अर्थात प्रभु महावीर देव का जन्म–मरण रूप आग या कर्मों की आग सर्वथा बुझ गई, जिससे कि वे परम–सुखी बन गये इसी प्रकार अपने जीवन में भी कर्मों की आग की भड़कानेवाले मिथ्यात्व, अशुभ वृत्तियां, शक्तियों का दुरुपयोग आदि आश्रवों का क्रमशः त्याग करने की शक्ति बढाते रहना, दीवाली पर्व की आराधना का संक्षिप्त मर्मस्पर्शी अर्थ है

इसी दृष्टिकोण से आजकी रूपचौदश का मतलब समझना चाहिए, रूप याने आत्मा के शुद्ध, निर्विकल्प, सच्चिदानंदमय, ज्ञानादि–गुणसमूह रूप स्वरूप को जानने, समझने, विचारने की योग्य भूमिका तैयार कर आगामी दिन दीवाली पर्व की यथार्थ आराधना के लिए तैयार होने के लिये

अतः एव आत्म–स्वरूप की विचारणा या सम्यक् ज्ञान के प्रकाश के बिना चाहे कितना भी बुद्धि शक्ति या बाह्य साधनों का विकास जीवन शुद्धि के वास्ते अंधकारमय ही है, इस चीज को काली चौदश नाम से समझना चाहिए।

भले होय भूंडा–भला तोये भाइ ने भाइ।
दात -दुखावे जीभने, तोये दांत सुखदाइ॥

दीपावली पर्व महिमा

आज का दिन महान पवित्र है

आज से २४८२ वर्ष पहले शासन नायक श्री महावीर देव भगवत आज की रात्रि के अन्तिम प्रहर की दो घड़ी बाकी रहने पर संसार के बंधनों से मुक्त हो कर अजरामर पद रूप मोक्ष पद को पाये थे

आज इस स्मृति-पथ में आकर हर्ष और शोक की मिश्र भावना के बल पर जीवन-शुद्धि के कर्तव्यों के प्रति सावधान होने का विवेकी जनों का कर्तव्य है

दीपावली पर्व महिमा

आज का दिन महान पवित्र है।

आज से २४८२ वर्ष पहले शासन नायक श्री महावीर देव भगवत आज की रात्रि के अन्तिम प्रहर की दो घड़ी बाकी रहने पर संसार के बंधनों से मुक्त हो कर अजरामर पद रूप मोक्ष पद को पाये थे

आज इस स्मृति पथ में आ कर हर्ष शोक की मिश्र भावना के बल पर जीवन शुद्धि के कर्तव्यों के प्रति सावधान होने का विवेकी जनों का कर्तव्य है।

मोह-रूपी कि गाढ़-राग और द्वेष के निबिड अंधकार को नष्ट कर अनेक भव्यात्माओं को मुक्ति के पथ के सफल यात्री बना कर सर्व श्रेष्ठ कल्याण की साधना करने-करानेवाले अनन्त उपकारी

तीर्थे पाप टले नहीं, जो मन मेल न जाय।
खाल-कुंडीनुं हांडलुं, घोये उपर शुं थाय? ॥

विश्ववत्सल श्री तीर्थंकर देव परमात्मा जैसे महापुरुषों का अपनी दुनिया से चल बसना अपना जैसे निजी मान ग्यो कर ममार के मोह–माया के चक्कर मे फँस रहनेवाले कर्तव्य विमूढ आत्माओं के लिए तो विवेक के उज्ज्वल प्रकाश से देखा जाय तो अत्यंत मानसिक आघात पैदा करनेवाला है

पर साथ ही निष्कारणोपकारी जगद्बंधु अरिहंतदेवों का नश्वर भौतिक देह संसार से नाम शेष होते हुए भी उन के अपार करुणा पूर्ण अमर–देह रूप आगमों का परिशीलन गुरु निश्रामें करने पर आश्वासन भी मिलता है कि —

जगत्पूज्य तीर्थंकर देव परमात्मा की मौजुदगी में अपनी आत्मा न जाने संसार की किस गनिम होगी! या तीर्थंकरदेव की वाणी और उन की कर्तव्य निष्ठा को पहचानने की क्षमता नहीं पाई होगी तभी तो नदी के किनारे रह कर भी प्यासे रहनेवाले की ज्यों अपना जीवन विश्व को प्रकाशमय बनानेवाले तीर्थंकर रूप सूर्य के जमाने में गुजर कर भी घुघु के पक्षी की ज्यों अंधकारमय ही रहा—

अतः अब भी तीर्थंकरदेव–परमात्मा के शासन को भलीभांति गुरुगम से विवेक के साथ समज कर यथाशक्य आराधना में आगे कदम बढाते हुए कर्म निर्जरा के ध्येय को परिपूर्ण करने की **कोशिश करना आज के पवित्र दिन का मूक संदेश है।**

जुदा जुदा स्वभावना, जन देखी मत कर खेद।
तीखा कडवा ने गल्या, तरुवरमां पण भेद॥

दीपावली का शुभ संदेश
अतस्तल में दीप जलाना ! ! !

ओ ! कुटिया के अमर सनेही !

दीपमालिका वहीं मनाना ॥



दी पा व ली र ह स्य

१

वैभव के इन प्रासादों पर,
नश्वरता के अवसादों पर,
विद्युतसी इस चकाचौंध में
अपने को तूँ भूल न जाना
—अतस्तल में ०॥

२

चपला-सी चचल मायामें,
मृगतृष्णा की इस छायाम ।
कितने दीप बुझे जाते हैं,
क्या तूँने उनको पहचाना ?
—अंतस्तलमें ०॥

३

उसके धर्म दीप जलाना ?
अंध दृष्टि हो क्यों इठलाता ?
यहाँ तुम्हार नहीं तेरा है,
है तो एक मुसाफिरखाना
अंतस्तलमें ०॥

४

उजड नीड छिपेंगे तारे,
दीपक बुझ जायेंगे सारे ।
विस्मृत होगा नवप्रकाश यह,
तब होगा तुझको पछताना ॥
—अतस्तलमें ०॥

५

इन दीपमें शलभ न हो तूँ,
स्वयप्रकाश है अजर अमर तूँ ।
मनोदित हो इस प्रकृतिका,
अब तक तूँने भेद न जाना ॥
अतस्तलमें ०॥

६

जगती के इम निस्तल जलमें,
प्रलयकर-सी इस हलचलमें ।
इसमें शाश्वत अमरदीप है,
स्वप्ननिशा से अब जग जाना ॥
—अतस्तलमें ०॥







इसी दृष्टि-कोण से आज का दिन तहेवार के रूपमें परम हर्ष-आनन्द का प्रतीक भी माना गया है कि—

जब सारा संसार यथार्थ-ज्ञानी वीतराग परमात्मा के सदुपदेशों में से बतनेवाली अनेकान्तमय वस्तु की पहचान करानेवाली सद्दृष्टि के अभाव में विषम कलिकाल के पंजे में फँसा जा रहा है, फलतः कल्याण-साधना के मिले हुए संयोगों को व्यर्थ-प्राय बना देते है, तब हमें तो परमहितकर कल्याण का पवित्र मार्ग जैन शासन की आराधना के रुपमें मिला है, उसे शक्य प्रयत्नों से सफल बना कर अनंत जन्मों के उपार्जित कर्मों के समूह को हटा कर वास्तविक आत्म कल्याण की साधना कर लेने का परम हर्ष भी आज का पवित्र दिन पैदा करता है।

इन दोनों बातों का विचार कर अंतरात्मा में कल्याण साधना का प्रकाश फैला देना सच्ची दीपावली है।

—का० कृ० ०))

नूतन वर्ष की मंगल कामना

वीर नि स २४८३ ज्ञानीयों का संदेश वि सं २०१३

नूतन वर्ष का मंगल प्रभात आबाल गोपाल सब किसी को स्फूर्ति-नव प्रेरणा देता है.

सज्जन सौना स्नेही छे, पण दुष्ट तणे मन काळ।
जगत चक्षु छे सूर्य पण, घुवड गणे विकराल॥

ज्ञानी भगवतोंने भी शुभ प्रवृत्तिओं मे एकाग्रता के साथ टिके रहने का बल न प्राप्त होने तक लौकिक व्यवहारों का भी वास्तविक रूपमें ज्ञान के लिए नूतन वर्ष की मंगलमयता का यथार्थ रहस्य बताया है—

वह यह है कि-"नूतन वर्ष के मगल प्रभात मे सब कोई नये वस्त्र पहन कर, क्रोध, इर्ष्या आदि स्वभाव की विषमता को दबा कर भी" नूतन वर्ष का प्रथम दिन अच्छा और मगलमय तो पूरा वर्ष अच्छा" ऐसी भावना को ले कर विविध कामनाए एवं प्रवृत्तिए नये साल के प्रथम दिन को की जाती है.

परन्तु इन सब कामना एव प्रवृत्तियों की सफलता का आधार शिला रूप विवेक और समझदारी न हो तो मात्र कामना या ऐसी-वैसी प्रवृत्तियों की भरमार से इष्ट सिद्धि होती नहीं है

अत विवेक बुद्धि के साथ यह सोचना जरूरी है कि —

जैसे किसी अमलदार, शेठ, या बड़े आदमी को अपने घर आमंत्रित करना हो तो उनके मान-सम्मान के अनुकूल शहर, गली, घर एवं रूप को सुसज्जित बनाकर सुंदर वस्त्र एव शरीर को साफ-सुथरा बनाये रखनेकी सावधानी रखना आवश्यक होता है

गणे नहीं गभीर जन, दुर्जनना आवाज।
श्वान भसे सो सामटा, गणे नहिं गजराज॥

उसी तरह अनंतज्ञानी जिस को दिलसे चाहते हैं, अपने मनो-मंदिरमें बारबार आमंत्रित करते हैं, तथा अनंतभवों में भी दुर्लभ ऐसी पारमार्थिक सुख-शांति को नूतन वर्ष के मंगलप्रभात या मंगलभूत प्रथम दिन की कामनाए-प्रवृत्तियों द्वारा जीवन में स्थापित करने-पधराने वास्ते मनोमंदिरमेंसे राग-द्वेष, विषय-कषाय, ईर्ष्या-असहिष्णुता आदि कूडे-कचरे को साफ करके क्रोध, मान, माया, लोभ, अहंभाव, पौद्गलिकराग, विषयतृष्णा आदि पुराने-अतिपुराने अनादि कालसे पहने हुए पुराने वस्त्र उतार कर सत्य, शील, दया, क्षमा, संतोष, गुणानुराग, आदि नये वस्त्रों से सुसज्ज होकर, वीतराग-प्रभु के हितकर वचनों को जीवनमें उतारने की यथाशक्य प्रवृत्तिरूप व्यवस्थित फर्नीचर लगाकर, सच्ची सुख-शांति को आमंत्रित कर उसके सत्कार का शुभ संकल्प नूतन वर्ष के मंगलभूत प्रथम दिनमें करना जरुरी है

ज्ञानीयों के इस संदेश को सोच समझकर नूतन वर्ष को मंगलमय बना देना प्रत्येक विवेकी का कर्तव्य है

—का० सु० १

बहु जन मळीने जे करे, ते एके नवि थाय।
मायरणी घर स्वच्छ करे, सली एके शु थाय॥

ध्यान की चार भूमिकाएं

• संसार के पदार्थों को पाने का और उन्हें भोगने की इच्छा आर्तध्यान की प्राथमिक भूमिका है.

• मिली हुई विषय-भोग की सामग्री को टिकाये रखने के लिए चाहे जैसे भी प्रयत्न करने की इच्छा रौद्रध्यान की प्राथमिक भूमिका है

• वीतराग परमात्मा के बताये हुए जगत के पदार्थों के स्वरूप की सच्ची प्रतीति धर्मध्यान की प्राथमिक भूमिका है

• आत्मा का मूलभूत ज्ञानादि गुणों की सम्पूर्ण निर्मल विचारणा शुक्लध्यान की प्राथमिक भूमिका है

-फा० सु० २

सदा याद रखो ! ! (१७)

• सत्कार-रहित युवक, विवेक-शून्य धनिक और विचारहीन कर्मों वाला उद्यमी मनुष्य परिणाम में सिवाय हृदयतापक कुछ भी नहीं पाता है

• विकारों के आवेश में कर्तव्यनिर्णय की भूमिका छिन्न-भिन्न होकर समझदारी का दिवाला पड़ जाता है, तब सत्संग और महान् पुरुषों के जीवन के आदर्श की विचारणा ही जीवन को मूल शक्ति से समृद्ध बना सकती है अतः हरदम सत्संग और शास्त्र स्वाध्याय के साथ महा पुरुषों के जीवन को आदर्श तुल्य बनाये रखो.

अशक्त पण शक्ति धरे, करे जो सत्पुरुष...
जाय आंधळो काशीए, धरी लक्षने

० इन्सान धन-सपत्ति के नाते से जितना गरीब नहीं होता है, उससे कईगुना अपनी वृत्तियों को दीनता और कर्तव्यनिष्ठा की गैरहाजरीसे रक-तुल्य बन जाता है, फलत जीवन का रहा-सहा शक्तिए भी पुनरुज्जीवित न होकर मृतप्राय बनकर उत्थान या प्रगति के तमाम द्वार अज्ञानतावश अपने आप बध हो जाता है

—का० सु० ३

मदा याद रक्खो !!! (१८)

० विनय और विवेक जीवनरथ के दो चक्र हैं, और इन्हें गतिशील करनेवाला सम्यक्ज्ञान गुरुनिश्रासे व्यवस्थित रूपसे पाया जाय तो निराबाध गतिसे उन्नति के पथपर जीवनरथ बढ सकता है.

० सद्विचारो का सेवन मात्र व्यावहारिक सौजन्य के दीखावे के लिए किया जाय तब भी विवेक की भूमिका सपादित करानेवाली आन्तरिक कर्त्तव्यनिष्ठा और भावनाओं की निर्मलता के बल पर आचार शुद्धिका तत्त्व दीर्घकालसे भी पाया जा सकता है

० परिस्थिति और वातावरण की प्रतिकूलता में ही ज्ञानी-अज्ञानी की जीवन चर्या आतरिक तत्त्वों की यथार्थ पहचान को व्यक्त कर ससार के सामने जीवन का सच्चा आदर्श उपस्थित करती है ।

—का० सु० ४

सत्यवादी साधु कहे, राखे हृदये रोष।
नाक विना नकटा दीसे, दर्पणनो शो दोष ? ॥

ज्ञान पचमी पर्व की महत्ता

नूतन वर्ष के प्रारम्भ में ज्ञानीयोंने जो सदेश जीवनशुद्धि के शुभ संकल्प का बनाया था, उसे मूर्तरूप देने वास्ते पहला ही पर्व ज्ञानपचमी का अति विशिष्ट महत्व पूर्ण आज के दिन में बनाया है

आत्मा की मूलभूत ज्ञानादि शक्तियों को विकसित किये बिना जीवन की शुद्धि शक्य ही नहीं, अतः विचारों की भूमिका में स्पष्ट रूपसे चैतन्य शक्तियों का भान हो जाना सर्व प्रथम आवश्यक है

ऐसे तो प्रत्येक धर्म–सम्प्रदाय या बुद्धिशाली विचारक वर्ग ज्ञान का महत्व मानते हैं और बताते हैं, पर ज्ञान का बाह्य स्वरूप ही लोगों के ख्याल में होने से वास्तविक स्वरूप का विवेक नहीं होता है अतः आज ज्ञान की आराधना करके असली ज्ञान के रहस्य को, समझ कर जीवन को विकसित बनाने का प्रयत्न करना आवश्यक है

ज्ञान का अर्थ होता है जानना, परंतु जानना और समझना इन दोनों के बीच बडा अंतर है, पदार्थ को जान लेना अलग चीज है, और उसे समझना अलग चीज है, जानी हुई बातें मौका आने पर जीवन में कोई काममें न आकर मात्र औरोंको उपदेश देना या हितशिक्षा देना इतनमें ही संतोष मानकर जीवन को आगे

कर ही काया कुतरी, करे तो भजन में भग।
जरा सा टुकडा डाल के, करो भजन नि ८

पदार्थ से रोके रखती है, और समझी हुई बातें समय पर अपने कर्तव्यों का भान जागृत बनाये रखकर दूसरों के दोषों के प्रति जाती हुई दृष्टि को रोक कर अन्तर्निरीक्षण द्वारा खुदकी गलतीए-क्षतिए एवं अपूर्णतायें समझकर उसे दूर करने की चेष्टा पैदा करती है

जानना यह ज्ञानका बाह्य रूप है और समझना यह ज्ञानका आभ्यंतर स्वरूप है

विचारों को-मान्यता के साथ जोड कर यथार्थ रूपमें जीवन-शुद्धि के तरफ का कर्तव्य की दिशा में स्थापित करने वास्ते ज्ञानका उपयोग ही वास्तविक सम्यक् ज्ञान है.

इस प्रकार के सम्यक् ज्ञान को जीवन में पाने का लक्ष्य आज श्रुतज्ञान की यथार्थ आराधना द्वारा पैदा कर लेना जरुरी है

इस ज्ञान को शास्त्रोंमें **"पढम नाणतओ दया" "ज्ञान क्रियानु मूल छे" "ज्ञान सर्वगुणप्रधानम्" "पहेलु ज्ञान ने पछी क्रिया"** आदि शब्दों से महत्त्वपूर्ण माना है केवल शास्त्रों की पढाई, शब्द ज्ञान की प्राप्ति, परोपदेशपटुता सिखानेवाला एवं वासना-कामनाओं की पूर्णता में किये जानेवाले बुद्धि के दुरुपयोगवाली होंशियारीवाला व्यावहारिकज्ञान जीवन को कभी उन्नत बना सकता नहीं है—और उस ज्ञानसे जीवन शुद्धि कभी

अक्षर एक न आवडे, पण अभिमान अपार।
जगमां तेहने जाणवो, सौ मूरख सरदार॥

उपाय नहीं है—ऐसा मदद मिलने पर आपकी पवित्र आराधना द्वारा प्रत्येक आराधक को

—का० सू० ५

सदा याद रक्खो!!! (२७)

० समझदारी बिना चाहे कितना भी ज्ञान पाया जाय, पर वह बिना ब्रेक (Break) की मोटर का या जीवन को खतरे में डाल नहीं सकता है

० मानव की खासियत इसी चीजमें है कि—वह अपनी तमाम आवश्यकताओं को बिना किसी का घर बिगाड़े या दिल दुखाये पूर्ण करे

० सामाजिक पराधीनता की ओर धकेलता प्रतीत होने पर यह सोचना जरूरी है कि

“इन आवश्यकताओं की पृष्ठ भूमिका में विकार एवं वासनाओं का आवेग है? या शरीर का निर्वाह? या मजबूरी है?”

विकार वासनाओं के आवेग में उठनेवाली आवश्यकताओं को पूरा करना जीवन को सुख-शान्ति के मार्ग पर ले जाने का मार्ग ?

फा० सू० ६

तब लग जोगी जग गुरु, जब लग रहे उदास।
जब जोगी आशा करे, तब जोगी जगदास॥

समझदारी किसमें?

० इन्द्रियों के विकारों के पीछे पागल-से बन कर इन्द्रिय एवं मन की तमाम वृत्तियों के संचालक अनंत शक्तिनिधान आत्मा को कर्मों के जाल में फँसा देने में समझदारी है? कि:-विवेक एवं सद्विचार के बल पर जीवन शुद्धि के लिए वृत्तियों का निग्रह करने में समझदारी है।

० पुराने कर्मों को समभाव से सहन कर बड़ी अदब के साथ पुराने कर्जे को उतारने के बराबर दुःखों को हँसते-मुँह झेलने में समझदारी है। कि:-पूर्वकृत अशुभ कर्मों के विषम विपाक के आधार पर आनेवाले दुःखों से घबरा कर उन्हें दूर करने वास्ते अविवेक और मूढ़ प्रवृत्तिएं कर के दुःखों को बुला कर लानेवाले अशुभ कर्मों के अधिक उपार्जन में समझदारी है।

० सर्वोत्कृष्ट पौद्गलिक-सांसारिक सुख-वैभव की चरम-सीमा पर रहे हुए अनुत्तरवासी देव भी जिस मानव-भव की प्राप्ति कर विरति को पा कर जीवन का श्रेय बनाने वास्ते छटपटाते हैं, वैसे महामूल्य मानव-भव आदि रत्नत्रयी की साधना के अनुकूल सामग्री पा कर तुच्छ विषय भोगों के पीछे जीवन को बरबाद करने में समझदारी है? कि:-जीवन शुद्धि के लिए की जानेवाली रत्नत्रयी की साधना में समझदारी है।

—का० सु० ७

कशुं न निपजे एकथी फोगट मन फूलाय।
पगमांड ने तालु मळी, घटनुं रक्षण थाय॥

विचारों की शुद्धि कैसे हो ?

हर काम करने में शुद्ध विचार और पवित्र निष्ठा की आवश्यकता रहती है, गन्दे ख्याल और स्वार्थमय भावना से किए जानेवाले कार्य कभी जीवन को पवित्र बनाने में उपयोगी नहीं होते हैं, मनकी शक्ति बारबार पुराने संस्कारों के कारण विचारधारा को दूषित करता रहता है सत्समागम शास्त्रस्वाध्याय एवं जीवनशुद्धि की उत्कंठा में से उठनेवाली शुभवृत्तियों के आधार पर विचारों को विवेक के चलनेसे शुद्ध-निर्मल बनाने का सत्प्रयत्न करना प्रत्येक मुमुक्षु का कर्तव्य है.

आत्मकल्याण की साधना के मार्ग में प्रवृत्त होनेवाले भावुक आत्माओं को इसी लिए ज्ञानीजन अंतर्निरीक्षण, निर्दोष-विचारणा, अपनी प्रवृत्तियों की समालोचनात्मक दृष्टि आदि जीवनशुद्धि के मुख्य तत्त्वों की आवश्यकता अत्यधिक बताई है   का० मु० ७

धर्म-कल्पवृक्ष

संसार की हर कामनाओं को पूर्ण करने में जैसे कल्पवृक्ष उपयोगी होता है, उस तरह आन्तरिक जीवन-विकास को सफल बनानेवाली तमाम परिस्थिति का सफल संयोजन धर्म की आराधना रूप कल्पवृक्ष से होता है

एक अवगुण आपणु, सघला बगाडे गुण।
चपटी हलदर नाखता, जेम खीचडीनो रंग॥

धर्म क्रिया पर
अनुराग रुचि — बीज

वैराग्य वासना स्वरूप
बीज योग्य क्षेत्र

ज्ञान—ध्यान—स्वाध्याय
आदि शुभ प्रवृत्ति — पानी

संयमी महापुरुषों की
सोबत — खातर

सारासार विवेचक—
—बुद्धि — बाड

परमार्थ वृत्ति का
उद्रेक — अंकुर

सद्दर्शन साधनाओं के युक्त बन्ध
से महानीयों के मर्म में
छिपी करुणा — पत्ते

सात्त्विकी प्रवृत्ति
श्रद्धा—प्रशंसा

अपूर्व उपशम—मैत्रीभाव
पचरंगी फूल

लाभणादि क्षुद्र लाभों की
स्पृहा — कच्चे फल

मोहनीय कर्म के क्षयोपशमसे
आत्मिक—शक्तियों का विकास
पके फल

आत्मस्वरूप का विशुद्धानंद
अनुभव — फल का मीठा रस

मोक्ष की प्राप्ति — अंतिम फल

इस तरह धर्म—कल्पवृक्ष के स्वरूप को समझ कर यथायोग्य प्रवृत्तिद्वारा जीवन को सफल बनाने का लक्ष्य रखना विवेकी का उचित कर्तव्य है

—ज्ञा० सु० ८

अवगुण उपर गुण करे, ए सज्जन अभ्यास।
सुरतरु जो गलगाहीए, आपे परम सुवास॥

सदा याद रक्खो !!! (२३)

० संसार के समान काया में निरिक्षण करने से जो प्रवृत्ति होती है, वैसा यदि आत्मिक विकास के मार्ग में की जाय तो क के मार्ग की भावना सुलभ हो सकती है

० विवेक, आत्मसंयम इन्द्रियजय गुणानुराग एवं अन्तर्निरीक्षण द्वारा मुमुक्षु साधक अपनी उन्नति कर पाता है

० समुद्र के गहरे पानी में छिपे हुए छोटे-बड़े भँवर एवं पहाड़ों की टक्कर से बचाने के लिए समुद्र के यात्री को दीपस्तंभ जितना उपयोगी होता है, उतना ही शास्त्रवाक्यों का पर्यालोचन विवेकी साधक को उपयोगी होता है

० हर बात को सोचो ! समझो !' और परिस्थितिकी भूमिका से संतुलित करते रहो !!' ता कि पीछे से किसी प्रकार का पश्चाताप होने का मौका न आवे - का० सु० ०

सदा याद रक्खो !!! (२४)

० यदि विनय-विवेक और यथोचित मर्यादामें वचन प्रयोग किया जाय तो दुष्ट कुनिपात आदमी के उग्र स्वभाव को भी नम्र बनाया जा सकता है

० विचार और आचार के बीच की गहरी खाई को ज्ञानायोग

चउ गतिमां भमतां थका, दु:ख अनंतानंत।
भोगवियां एणे जीवडे, ते जाणे भगवंत॥

उपाय स मार्ग का यथार्थ श्रद्धा क बल पर आग ला जाय तब ही मोक्ष शुद्धि का असली तत्त्व पाया जा सकता है

७ सज्जनों के दिलमें जो यह परोपकार बुद्धिसे उठता है, वह ही जगत के प्राणियों को भयंकर अज्ञान के अंधकारसे बाहर निकालनेमें समर्थ है

८ आंतरिक विचारधारा का झुकाव शास्त्रानुकूल या महापुरुषों के जीवन से निखरते आदर्शों के अनुसार बनाने का प्रयत्न करना चाहिए

—का० मु० १०

विचारों का ब्रह्मचर्य

व्यावहारिक कार्यों की सफलता के वास्ते जरूरी तंदुरस्ती की दिशामें ज्ञानीयोंने सदाचार–ब्रह्मचर्य का महत्त्व माना है, और आध्यात्मिक क्षेत्रमें आगे बढने वास्ते भी ब्रह्मचर्य का पालन के पथ पर अग्रसर होना शक्य नहीं है, परंतु **ब्रह्मचर्य से मतलब मात्र** जननेंद्रिय का संयम या मैथुन त्याग से नहीं, परंतु **वृत्तियों को आत्मलक्षी बनाकर आदर्श सदाचारमय जीवन से है.**

इसी तरह विवेक और समझदारी की तंदुरस्ती पाने वास्ते अपने विचारों को भी मर्यादित रखते हुए हर पदार्थ के स्वरूप को

काल अनादि अभ्यास थी, परिणति विषय कषाय।
मेहनी शांति जब हुए, तेह समाधि उपाय॥

भिन्न २ दृष्टिकोणोंसे सोचने की आदत में डाल देना चाहिए, अन्यथा एकांतिक विचारों के बल पर जाने हुए पदार्थों के द्वारा यथार्थ स्वरूप कभी भी विचारकता प्राप्त नहीं हो पाती है, और ब्रह्मचर्य का यथार्थ पालन न करनेवालों के अपरिपक्ववयसे पैदा होनेवाली संतानों की ज्यों अधूरे विचारों से पदार्थों का अपूर्ण ज्ञान होकर मिथ्या ज्ञान हासिल होता रहता है

अतः अपने विचारों में सापेक्षवाद भगवान की बताई मर्यादानुसार द्रव्य–क्षेत्र, काल, भाव, संयोग, परिस्थिति आदि अनेक दृष्टिकोणोंसे हर पदार्थ को समझने का अभ्यास करना उचित है।

फलतः वीतराग भगवान का बताया हुआ अनेकान्तवाद–स्याद्वाद का असली प्रतिबिंब अपने विचारों में उठ आयगा, और यथार्थ स्वरूप में विवेक और विचारकता प्राप्त हो जायगी।

—ज्ञा० सु० [illegible]

सदा याद रखना!! (५)

० संसार में जहाँ भी देखो वहाँ हर चीज हर समय पर अपना स्वरूप बदलती रहती है, और विविध परिवर्तनों के गति–शील प्रवाह में बहती रहती है, फिर भी चलती गाड़ी में बैठे हुए को बाहरी पदार्थ चलते होने का भ्रम या स्थिर जगह में घूमते हुए लड़के को देखने के भ्रम

आ संसार असारमां, भमता काळ अनंत।
असमाधि थी आतमा शांति न पामे अंत॥

की ज्या अज्ञानवश मोहमूढ प्राणी को जगत के पदार्थ स्थिर एव मोहक मालूम पडते हैं।

विचारो के आधार पर आचार की भूमिका बाधी के आदर्शों को सत्य समझते हुए भी उस का व्यावहारिक रूप महापुरुषो के आचार रूप साचे मे विचारो का ज्ञान को सुव्यवस्थित बना कर जीवन शुद्धि के अनुकूल बन जाना चाहिए

आन्तरिक शुद्धि और पवित्रता के नाम पर अपनी योग्यतानुरूप भी यदि बाह्य—व्यावहारिक मर्यादा का पालन न किया जाय तो वह केवल ज्ञान मूढता ही है और उसे हटाने वाले शास्त्रीय विधि और निर्देश के आधार पर सुव्यवस्थित क्रिया मार्ग के अवलबन की आवश्यकता है क्या हम करना है? और क्या कर रहे हैं? ये दो विचार ही जीवन को उन्नत बनाने के मूल मत्र है।

• हर प्राणी जिस चीज को पाना चाहता है, उस के पीछे स्वार्थ की भावना न रह तो आत्मशक्ति की आकर्षण शक्ति से वह चीज अपने आप खींची हुई चली आती है

— का० सु० १२

कोई- अपूरव पुण्यथी, पाम्यो नर अवतार।
उत्तम कुल उत्पन्न थयो, सामग्री लही सार॥

मौत से डर क्यों? और किसको?

संसार में देखा जाता है कि छोटे-बड़े तमाम प्राणी हर समय विविध प्रवृत्तियाँ करके सुख-शांति पाने का प्रयत्न करते हैं, और उस का स्थाई आनन्द सदा बना रहे ऐसा चाहते हैं, परन्तु अपने विचारों को ज्ञानियों के वचनों की मर्यादा में नहीं बांधा सकने के कारण वास्तविक परिस्थिति का अज्ञान उनके प्राणियों को हमेशा भयभीत बना देता है

जब एक जीवन पाने के बाद मृत्यु के होने में स्वाभाविकता के अतिरिक्त और कुछ न होने भी संसार जीवों के दिल में बड़ा भारी डर मौत ने पैदा कर रखा है

इसलिए इस अपने जीवन की अमूल्य सम्पत्ति का परमार्थ-परोपकार में निरत-पूर्वक सदुपयोग करनेवाले को मौत का डर कभी नहीं होता है,

मौत के समय जीवन में किये हुए भयंकर पाप एवं दुष्कृत्यों के भावी परिणाम की विचार-धारा से ही अज्ञान-मूढ प्राणी चौंक कर मौत से डरने लगता है

अतः मौत से डरने की अपेक्षा कुकर्मों से डरते रहना जरूरी है

—का० सु० १३

पूजा करो जिनराजनी, शुभ ध्याने मन टेक।
साहम्मिवच्छल बहु करो, टाळो पापनो पंक॥

की क्या अज्ञानवश मोहमूढ़ प्राणी को जगत के पदार्थ स्थिर एवं मोहक मालूम पड़ते हैं।

विचारों के आधार पर आचार की भूमिका बनाने के आदर्श को मन में समझते हुए भी उसका व्यावहारिक रूप महापुरुषों के आचार रूप सांचे में विचारों को ढाल कर सुव्यवस्थित बना कर जीवन शुद्धि के अनुकूल बन जाना चाहिए।

आन्तरिक शुद्धि और पवित्रता के नाम पर अपनी योग्यतानुरूप भी यदि बाह्य—व्यावहारिक मर्यादा का पालन न किया जाय तो वह केवल ज्ञान मूढ़ता ही है और उसे हटाने वास्ते शास्त्रीय विधि और निर्देश के आधार पर सुव्यवस्थित क्रिया मार्ग के अवलम्बन की आवश्यकता है क्या हम करना है? और क्या कर रहे हैं? ये दो विचार ही जीवन को उन्नत बनाने के मूल मंत्र हैं।

० हर प्राणी जिस चीज को पाना चाहता है, उस के पीछे स्वार्थ की भावना न रहे तो आत्मशक्ति की आकर्षण शक्ति से वह चीज अपने आप खींची हुई चली आती है।

का० सु० १२

कोइ अपूरव पुण्यथी, पाम्यो नर अवतार।
उत्तम कुल उपन्न थयो, सामग्री रूडी सार॥

मौत से डर क्यों? और किसको?

संसार में देखा जाता है कि छोटे-बड़े तमाम प्राणी हर समय विविध प्रवृत्ति करके दुःख-शान्ति पाने की चेष्टा करते हैं, और उस का स्थान आनन्द सदा कायम बना रहे ऐसा चाहते हैं, परन्तु अपने विचारों को ज्ञानीयों के वचनों की मर्यादा में नहीं जमा सकने के कारण वास्तविक परिस्थिति का अज्ञान उन प्राणीयों को हमेशा भयभीत बना देता है

अतः एक जीवन पाने के बाद मृत्यु के होने में स्वाभाविकता के अतिरिक्त और कुछ न होने पर भी लोगों के दिल में बड़ा भारी डर मौत का पैदा कर रखा है

असल में, अपने जीवन की अमूल्य संपत्ति का परमार्थ-परोपकार में विवेक-पूर्वक सदुपयोग करनेवाले को मौत का डर कभी नहीं होता है,

मौत के समय जीवन में किये हुए भयंकर पाप एवं दुष्कृत्यों के भारी परिणाम की विचार-धारा से ही अज्ञान-मूढ़ प्राणी चौंक कर मौत से डरने लगता है

अतः मौत से डरने की अपेक्षा कुकर्मों से डरते रहना जरूरी है

—का० सु० १२

पूजा करो जिनराजनी, शुभ ध्याने मन टेक।
मोहमिथ्यात्वबळ पदु करो, टाळो पापनो पंक॥

THE WONDERFUL PRISCRIPTION

द वंडरफुल प्रिस्क्रिप्शन (चमत्कारिक दवाई का नुस्खा)

जगत में अनेक प्राणी दुःख और दर्द से पीड़ित हैं, और उनसे छूटने की चेष्टा करते हैं, परन्तु दुःख और दर्द का असली स्वरूप अज्ञानवश न समझने के कारण दुनिया के लोग ऊपर-ऊपर से ही दुःख और दर्द को दफनाने की चेष्टा में ही सन्तोष मान लेते हैं, परन्तु द्रव्य-दुःख भी सम्पूर्ण नष्ट नहीं होता है, तो फिर द्रव्य-दुःखों को पैदा करनेवाले आन्तरिक विकार और कर्मरूप भावदुःखों को नष्ट करने के लिए उद्योग या सत्प्रयत्न संसारी आत्माओं के नसीब में कहाँ से हो। अतः ज्ञानियों ने भावदुःखों के विनाश के लिए बताये हुए असली उपाय बाल-जीवों के हितार्थ विनोदात्मक शैली में यहाँ बताये जाते हैं

अद्भुत दवाई का जादुई नुस्खा

सम्यक्त्व पावडर	विशिष्ट विवेक शक्ति का बेस्ट एक्स्ट्रेक्ट.
घमंडत्याग का अर्क	परमार्थरुचि मिक्चर
द्वेष परित्याग सोल्ट	वासना निग्रह रूप सोडाबायकार्ब
उदारता का ऑइल	परदोषोपेक्षा का सत्त्व

आराधक भाव वॉटर

मनमां मरडाईने, मूरख फोगट मलकाय।
प्रबल सत्ता कर्मनी त्यां धार्युं कोनुं थाय॥

ऊपर की तमाम व्याख्या के गुणानुराग–दृष्टि की पेटेन्ट में धर्मक्रिया का आसेवन रूप बारबार निरन्तर रोज नियमित रूपसे मन पर नीचे के रोगों पर जादुई असर होता है

स्वार्थ लोलुपता का सन्निपात	विषयवासना रूप T B
कदाग्रह का विषमज्वर (टाइफाइड)	परनिंदा रूप केन्सर
ज्ञान का अजीर्ण	
सर्वज्ञ के सिद्धान्त रूप अन्न की अरुचि	आत्मप्रशंसा रूप वमन
पक्षमोह और आग्रहीपन रूप डबल न्यूमोनिया	क्रिया जड़ता रूप (लकवा) पक्षाघात

ऊपर की दवाई के अतिरिक्त नीचे की पेटेंट दवाइयें भी योग्य ज्ञानी सद्गुरु डॉक्टर के अभिप्रायानुसार काम में लेनी जरूरी है।

- श्रीजिन आज्ञा पिल्स (गोली)
- दोष शुद्धि टींक्चर
- आराधना टेब्लेट्स (टिकडियें)
- आत्मनिरीक्षण के इंजेक्शन

सम्यग्दृष्टि वीर जे, शत्रु मोहादिक आठ।
आठ कर्मनी वर्गणा, ते सेनानी ठाठ॥

- धर्मोपदेश जेली मुरब्बा)
- प्रायश्चित लेनीमेंट (मलम
- दुष्कनगर्हा डेकोक्शन (उकाला)
- प्रतिक्रमण लोशन पनाही मलम)
- सद्गुरु सेवा अवलेह चाटण)
- निरीह तपस्या के NAB के ६०६ नं. इंजेक्शन
- आचार शुद्धि के केल्शीयम इंजेक्शन
- सद्गुण-प्रशंसा के गोल्डन इंजेक्शन

उपरोक्त प्रिस्क्रिप्शन करीब २, हर भावरोगीयों के लिए एकसा उपयोगी है, फिर भी राग द्वेष और मोहरूप वात-पित्त और कफकी विषमतावाले दर्दीओं को नीचे के स्थल पर अविरत श्रद्धा की फी देकर मुफ्तही जाँच, निदान, चिकित्सा और ट्रीटमेंट का लाभ उठा कर अपने भावरोग हटाने का सत्प्रयत्न करना चाहिए

छोड के कुमत कुसंगत थी सनेह कीजे।
गुण ग्रही लीजे अवगुण दृष्टि टाल के॥
चिदानंद तत्त्व सदा आतम विचार कीजे।
अंतर सकल प्रमाद भाव छोड के॥

सब निवारण स्थल का नाम

घ युनिवर्सल स्पिरिच्युआलिस्ट हॉस्पीटल

स्पेर्टेट मेडिकल ओरिस्मे सुवर्ण सागर तट तिमिवन

आ नौन्दर परमात्मा ज्ञानगमदेव को मडिकल थियेटरे

प्रेसिडेन्ट व [illegible] डायरेक्टर [illegible]

श्री जिनाज्ञाधारी निर्ग्रंथ साधु

ठि उत्क्रांति हाउस

मार्ग परिणति स्ट्रीट नं ३

(तत्त्व संवेदन

मु. शासन नगर

व्हाया त्रिलोक रोड व मोड़

सेन्ट्रल ऑर्डर (जिनाज्ञा) —का० मु० १४

अन्तरङ्ग भोजन सामग्री

संसार के सभी प्राणी आशा-तृष्णा में व्यथित हैं, और उनके कारण कई प्रकार की उपाधियों में फँस जाते हैं, उन्हें दूर करने वास्ते कोटि में कोटि को निराकार का ज्ञानायतन अशुभ-भोजन की सामग्री ने [illegible] शुभ भोजन का आयोजन ज्ञानामृत बनाया है जिसे पान कर भव्यात्मा ज्ञानियों के वचनानुसार जीवन बना सकते हैं।

ऐसी उच्च भोजन-सामग्री के बहुत प्रकार ज्ञानियों ने बताये हैं जिसमें से थोड़ी बहुत यहाँ बताई जाती है

सडनु पडनु विणसनु, ए पुद्गलनो धर्म।
स्थिति पाके भ्रम नहि रहे, जाणो एहीज मर्म॥

भाव-भोजन की सुंदर सामग्री

लापसी-देव, गुरु और धर्म रूप गेहूँ के फाडे में सम्यक्त्व रूप घी और गुणानुराग रूप गुड मिला कर वीतराग-परमात्मा के वचनों की सतत विचारणा रूप चूल्हे पर पका कर तैयार की हुई

दूधपाक-आत्मा के गुणों के क्षायोपशमिक विकास रूप दूध में प्रभु पूजा, सद्गुरु सेवा, साधर्मिक-भक्ति वगैरह बादाम, पिस्ता, चारोली डाल कर ज्ञान-ध्यान रूप अग्निसे पका कर अधिक निर्मल बन हुए आत्मा के गुणों का बना हुआ

पूरी-ज्ञानादिका बनाए हुए जीवन-मर्यादा रूप गेहूँ के आटेका सद्वर्तन रूप वगैरह-पिंडा बना कर (उससे होनेवाली) जीवन शुद्धि रूप आकार देकर मोहनीय कर्म के संस्कारों का उच्छेद देनेवाले संयम-तप की भट्टी पर श्री तीर्थंकरों की आज्ञा रूप कडाई में शुभ ध्यान रूप घी मे तली हुई

खीचडी-क्षमा, सरलता, इंद्रिय वगैरह सद्गुण रूप धान (चाँवल) और सर्व जीवों के साथ मैत्री रूप मूँग की दाल की बनी हुई, आराधक भाव रूप घी से लचपच, और अनादिकाल के

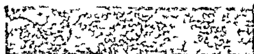
देहथी ही उत्पन्न भया, देहथी विलय ते होय।
तेणे कारण ए शरीरका, ममत न करणा कोय॥

मोहादि के अशुभ संस्कार रूप दीमकों के सब आत्मा से निकल जाते हैं आत्मशक्ति का उदय होता। कर्म निर्मा का पता दिया था संदर्शित कराया।

डाल-धर्मक्रिया रूप गुल [illegible] का दान को निरंतर आसेवन करने [illegible] विधि के उपयोग रूप पानी में डूबे अभ्यास [illegible] विकास [illegible]

पान का बीड़ा—सम्यग्दर्शन रूप नागरबेल का पान में सर्वज्ञानु-मारीपणा का काथ, विवेक का चूना, संतोष की जीनसान की [illegible], धर्मध्यान रूप [illegible] और धर्म स्वाध्याय रूप [illegible] प्रकार के मसाले डालकर तैयार किया हुआ।

॥ विजयतां जिनशासनम् ॥



अपनी वस्तु पारखी, न रहे न विश्वास।
एम ज्ञानी उत्तम-जना, धरे न पुद्गल आस॥


जीवन शुद्धिके तीन
अंग –
" सद्वर्त्तन, नम्रता,
गुणानुराग "
ज्ञा
न
ज
ॐ